गहरि ... गहरि ... नदिया ... गहरानी

[कहानी-संग्रह]

रुद्रशंकर मिश्र एम० ए०

—बुनियादी—

अपने परम हितैषी सहृदय

श्री नन्दलालजी मनूचा को

यह पहली कृति

सादर सप्रेम

समर्पित

आभार

शिक्षा-विभाग, युक्तप्रान्त ने प्रस्तुत पुस्तक को प्रकाशित करने की अनुमति दी, आलइंडिया रेडियो-विभाग ने ब्राडकास्ट कहानी 'गहरि गहरि नदिया गहरानी' को इस संकलन में समाविष्ट करने की स्वीकृति तथा प्रसाद-परिषद्, काशी ने मुझे साहित्यिक सम्पर्क प्रदान किया है, इसलिए मैं इन संस्थाओं का बहुत कृतज्ञ हूँ।

श्रद्धेय भइया जी साहब—पं० श्रीनारायणजी चतुर्वेदी एम० ए० (लंदन), इंस्पेक्टर आव् स्कूल्स ने मेरी पुस्तक की भूमिका लिखकर मुझे प्रोत्साहित किया है इसके लिए मैं हृदय से उनका आभारी हूँ।

पूज्य प्रोफेसर पं० विश्वनाथप्रसाद जी मिश्र, एम० ए० काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, का मैं विशेष रूप से ऋणी हूँ क्योंकि आपकी कृपा और योग से ही यह कहानी-संग्रह निकल सका है।

श्री शिवनाथ जी एम० ए० और श्री रामजी वाजपेयी, काशी ने जो सहयोग मुझे दिया है उसके प्रति भी मैं अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

लेखक

भूमिका

साहित्य में कहानी का स्थान बहुत ऊंचा है। उपन्यास कल की वस्तु है, किंतु कहानी की प्राचीनता प्रायः उतनी ही है जितनी स्वयं साहित्य की। उपनिषदो के समान प्राचीन साहित्य में भी सुंदर कथानक मिलते हैं। हमारे ही देश मे नहीं—प्रत्युत सारे संसार के साहित्य में—कहानी का स्थान सुरक्षित है। इसका कारण भी स्पष्ट है। सामाजिक प्राणी होने के कारण मनुष्य दूसरे के कामो में रुचिशील होता है। कहानियो मे दूसरे लोगो के कार्यों, उनके सुख-दुख, उनके राग-द्वेष, उनकी भलाई-बुराई, उनके उत्थान पतन आदि का वर्णन होता है। और हम लोग प्रख्यात काजी जी की तरह सदैव दूसरो के 'अंदेशो' से पीड़ित रहते हैं तथा सदैव रहेंगे। इसलिए कहानी-साहित्य का भविष्य भी सदा के लिए सुरक्षित है।

जिस प्रकार सभ्यता के विकास के साथ साथ हमारे कपड़ो ने मारे हुए पशुओ की खाल से आरंभ करके बनारसी किनखाब की शेरवानी या लार्ड्स के बनाये हुए सूटों तक उन्नति की है, उसी प्रकार साहित्य-विकास के साथ-साथ कहानी-लेखन-कला ने भी उन्नति की है। आज की कहानियाँ प्राचीन काल की कहानियो से केवल उद्देश्य मे मिलती हैं—उनके रूपो में आकाश-पाताल का अंतर है। कहानी-कला का यह विकास विशेष कर पश्चिम मे हुआ है। पाश्चात्य देशों मे कई शताब्दियो से गद्य-लेखन के ऊपर

विशेष ध्यान दिया जाता रहा है। पूर्वी देशों में—भारत, ईरान आदि में—इसके विपरीत पद्य ही साहित्यिकों का साधन था। गद्य पर विशेष ध्यान देने के कारण वहाँ के गद्य की शैली में बड़ा विकास हुआ। मुद्रण-कला ने गद्य की आवश्यकता को बढ़ाया और उसे प्रोत्साहन दिया। अनिवार्य शिक्षा और जनता मे उच्च शिक्षा के प्रचार ने भी गद्य की माँग को बढ़ाया। वैज्ञानिक आविष्कारो और नवीन सिद्धान्तो तथा आधुनिक विचारो के प्रभाव से गद्य पर सतत प्रभाव पड़ता रहा और लोगों की सुरुचि के साथ साथ गद्य-साहित्य भी उन्नति करता गया।

साधारणतया गंभीर विषयो मे रुचि लेनेवाले लोगो की संख्या कम होती है और ऐसे लोगो की संख्या तो और भी कम है जो गंभीर विषय को शुष्क ढग से लिखे हुए निबंध के द्वारा ग्रहण करने को तयार हो। मनोविज्ञान भी उन्हीं गंभीर विषयो में है, किंतु अंतर यह है कि वह ऐसा विज्ञान है जिससे लोगों के जीवन का बहुत निकट संबंध है। यदि कोई व्यक्ति मनोविज्ञान की समस्याओ को शास्त्रीय शुष्क रीति से समझावे तो उसको सुनने और समझनेवाले कम ही मिलेंगे, किंतु यदि वही समस्या कोई कुशल कलाकार कहानी के रूप में रख दे तो उसे समझने और उसमें रस लेनेवालो की सख्या कई गुना बढ़ जायगी। इसी प्रकार सामाजिक समस्याओ का शास्त्रीय या वैज्ञानिक वर्णन साधारण जन को नीरस और दूरूह मालूम पड़ता है, किंतु कहानी के रूप मे वे रुचिपूर्वक उसे ग्रहण कर लेते है।

अतएव व्यक्तिगत मनोरंजक कथानकों के बदले कहानी-लेखक ऐसी कहानियाँ लिखने लगे जो ज्ञान के प्रचार या समस्याओं को सुलझाने के लिए लिखी जाती है। पश्चिम मे पाठको की जानकारी और ज्ञान इतने बढ़ गए है कि वे कहानियाँ भी जो

इधर गंभीरतापूर्वक ध्यान दिया है। सर्वश्री प्रेमचन्द्र, कौशिक, सुदर्शन, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, भगवतीचरण वर्मा, अज्ञेय आदि कलाकार कहानी-आकाश के देदीप्यमान नक्षत्र है। इनकी कृतियो ने हिंदी को जो रत्न दिए है उनसे आज वह केवल शोभित ही नहीं प्रत्युत धनी भी है। और यह नक्षत्रावली दिनोदिन बढ़ती ही जाती है, जिससे हमारे कहानी-साहित्य के उज्ज्वल भविष्य मे संदेह नहीं रह जाता।

पं० इन्द्रशकर मिश्र उदीयमान नक्षत्रों में है। उनकी कहानी कला आधुनिकतम है। उनकी शैली, जैसा कि प्रत्येक व्यक्तित्व रखनेवाले व्यक्ति के लिए आवश्यक है, उनकी अपनी है। उनके चित्रों मे जीवन की झलक है, उसकी रूपरेखा स्पष्ट है। उनके साधारण पात्र जीते-जागते सजीव प्राणी है और उनका अर्थ चाहे वह व्यग्य ही में क्यों न व्यक्त किया गया हो, समझनेवाले के लिए दुरूह नहीं है। और सबसे बड़ी बात, और कहानी के लिए जो सबसे अधिक प्रशंसा की बात होती है वह, यह है कि वे छायावादी नहीं हैं। वे मनोरंजक है। उनको पढ़ने के लिए मस्तिष्क पर जोर नहीं लगाना पड़ता।

कदाचित् कुछ लोग उन्हें 'आधुनिकतम' न कहें, क्योकि आज कल आधुनिकतम होने के लिए कुछ लोग उच्छ्रृंखलता के पुट को आवश्यक समझते हैं। यह कहना व्यर्थ है कि मै इस मत से सहमत नहीं। उच्छ्रृंखलता उतनी ही पुरानी है जितना पुराना यह शब्द है। अनादिकाल से कुछ लोगों मे उच्छ्रृंखलता रही है जिसका प्रतिबिम्ब उनके साहित्य में भी पड़ गया है। किंतु उस उच्छ्रृंखलता के कारण पुरानी कहानी आधुनिक न हो जायगी। उच्छ्रृंखलता उस समय की स्मारक है जब मनुष्य जगल में रहता था और जब जंगल-कानून का विधान था। आज का मनुष्य

इतना छोटा कर दिया है कि कोई भी तरंग, वह कहीं भी क्यों न उठे, हमारे देश से भी टकराती है। चाहे वह हिटलर की महत्त्वाकांक्षा हो, चाहे लेलिन की रक्तक्रांति हो, चाहे वह रामबाण पैनिसिलीन हो और चाहे वह विनाशकारी अणु बम हो—हम उसके प्रभाव से बच नहीं सकते। विचारों की छूत तो बैक्टीरिया की छूत से भी अधिक सूक्ष्म—और इसलिए अधिक संक्रामक होती है। और विचारों का प्रभाव हमारे साहित्य पर बिना पड़े रह नहीं सकता। अतएव चाहे जीवन हो और चाहे जीवन का दृष्टिकोण, हम संसार की उपेक्षा नहीं कर सकते। यह अवश्य है कि हम अपनी प्रतिभा के अनुसार उन प्रभावों को प्रभावित करके उन्हें तोड़-मोड़ सकते है, कदाचित् किसी-किसी प्रभाव को नष्ट भी कर सकें, किंतु उसके प्रहार के घाव का चिन्ह हमारे साहित्य-शरीर के अंग पर बना ही रहेगा।

पाश्चात्य साहित्य से हमने 'आधुनिक कहानी' दत्तक ली है। पोष्यपुत्र की भाँति वह हमारे साहित्य-परिवार का एक अनन्य अंग हो गई है। हम उसका अपनी ही संतान की भाँति लालन-पालन कर रहे हैं। इस समय लाड़ले पुत्र की भाँति उसको बहुमूल्य वस्त्रों और कलात्मक आभूषणो से सुसज्जित कर रहे है। उसको स्वादिष्ठ और पौष्टिक पदार्थो से पुष्ट करने में लगे है। हिंदी-साहित्य का यह लाड़ला पोष्यपुत्र हमारी सावधानी और चिंतापूर्ण उद्योगो से शीघ्र ही पूर्ण, बलिष्ठ और प्रतिभावान् युवक के रूप में सामने आवेगा।

हमारी इस भविष्यवाणी का आधार हमारा आज का कहानी-साहित्य है। यद्यपि पहली आधुनिक कहानियाँ पं० माधवप्रसाद मिश्र और पं० चन्द्रधर गुलेरी ने आज से प्रायः पचास वर्ष पहले लिखी थीं, तथापि वास्तव में हिंदी ने पिछले तीस वर्षो मे ही

इधर गंभीरतापूर्वक ध्यान दिया है। सर्वश्री प्रेमचन्द्र, कौशिक, सुदर्शन, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, भगवतीचरण वर्मा, अज्ञेय आदि कलाकार कहानी-आकाश के देदीप्यमान नक्षत्र है। इनकी कृतियों ने हिंदी को जो रत्न दिए है उनसे आज वह केवल शोभित ही नहीं प्रत्युत धनी भी है। और यह नक्षत्रावली दिनोदिन बढ़ती ही जाती है, जिससे हमारे कहानी-साहित्य के उज्ज्वल भविष्य मे संदेह नहीं रह जाता।

पं० इन्द्रशकर मिश्र उदीयमान नक्षत्रो में हैं। उनकी कहानी कला आधुनिकतम है। उनकी शैली, जैसा कि प्रत्येक व्यक्तित्व रखनेवाले व्यक्ति के लिए आवश्यक है, उनकी अपनी है। उनके चित्रों मे जीवन की झलक है, उसकी रूपरेखा स्पष्ट है। उनके साधारण पात्र जीते-जागते सजीव प्राणी है और उनका अर्थ चाहे वह व्यग्य ही में क्यों न व्यक्त किया गया हो, समझनेवाले के लिए दुरूह नहीं है। और सबसे बड़ी बात, और कहानी के लिए जो सबसे अधिक प्रशंसा की बात होती है वह, यह है कि वे छायावादी नहीं है। वे मनोरंजक हैं। उनको पढ़ने के लिए मस्तिष्क पर ज़ोर नहीं लगाना पड़ता।

कदाचित् कुछ लोग उन्हें 'आधुनिकतम' न कहें, क्योंकि आज कल आधुनिकतम होने के लिए कुछ लोग उच्छ्रृंखलता के पुट को आवश्यक समझते हैं। यह कहना व्यर्थ है कि मैं इस मत से सहमत नहीं। उच्छ्रृखलता उतनी ही पुरानी है जितना पुराना यह शब्द है। अनादिकाल से कुछ लोगों में उच्छ्रृंखलता रही है जिसका प्रतिबिम्ब उनके साहित्य मे भी पड़ गया है। किंतु उस उच्छ्रृंखलता के कारण पुरानी कहानी आधुनिक न हो जायगी। उच्छृंखलता उस समय की स्मारक है जब मनुष्य जगल में रहता था और जब जंगल-कानून का विधान था। आज का मनुष्य

समाजशील, संयमित, मर्यादाप्रिय प्राणी है। जो साहित्य समाज-विरोधी, असंयमित, मर्यादा-विरोधी अर्थात् उच्छृंखल है वह सुसंगठित समाज के योग्य नहीं। वही अशिव है। प० इन्द्रशंकर मिश्र समाज के उन्नतिशील परिवर्तन में विश्वास करते है किंतु वे उच्छृंखलता के हिमायती नहीं है यह उनकी कहानियों से स्पष्ट है।

मुझे आशा है कि जिस लेखनी का आरंभ इन कलात्मक कहानियों से हुआ है वह भविष्य में हिंदी-साहित्य को और भी उच्चकोटि का साहित्य देगी।

श्रीनारायण चतुर्वेदी

मेरी बात—

आधुनिक हिंदी-साहित्य में व्यंगात्मक रचनाओं का काफी अभाव है। व्यंग साहित्य का चोखा अंग है। वह खरेपन का प्रतीक है और खोखलेपन की अभिव्यक्ति। बात सीधे न कहकर परोक्ष रूप में कही जाय जिससे असत्य तिलमिला उठे तो वह व्यंग हो जाएगा। मेरी दृष्टि इस ओर रही है। इसलिए मेरी कृति में आपको व्यंग के छींटे मिलेंगे। युग, पुरुष और नारी की दुर्बलताओं को लेकर उन पर मैंने ताना मारने का साहस किया है, चिकोटी भी काटी है, गुदगुदाया है, कहीं धज्जियाँ उड़ाने से भी बाज नहीं आया हूँ, क्योंकि शब्दों की चोट बड़ी कड़ी होती है—अन्तरात्मा को हिला देती है, मस्तिष्क को उभार देती है, सत्य को बिखेर देती है, ऐसा मेरा विश्वास है।

कहानी मे जीवन हो। यह कहानी की पहली माप है। यथार्थवाद की पृष्ठभूमि पर वह स्थापित हो। उसका निरूपण मनोवैज्ञानिक हो। शैली में आकर्षण हो—बहाव और लोच, जिससे दिमाग पर जोर न पड़े क्योंकि मनोरंजन और विनोद के लिए ही कहानी पढ़ी जाती है। फिर भी जीवन या काल का कोई गम्भीर सत्य उसमें निहित हो। कहानी में समाज के टाइपों का समावेश और निर्माण जरूरी चीजें है। पात्र सजीव हो—समाज के प्रतिनिधि, जैसे कहानियों मे कुमार, कामरेड, प्रोफेसर''शम्मो, रेखा, छाया, नई रोशनी, मीना, मिस बरुचा ''ऐसे नमूने आज के आधुनिक समाज की विशेषताएँ हैं। चरित्र-चित्रण से निखर उठे और बातचीत का ढंग, डायलाग, स्वाभाविक, चुस्त, जानदार

हो। फिर कला की दृष्टि से कहानी में एक सज्जा-फिनिश-न हो तो वह फीकी-सी लगती है। इन सबके अतिरिक्त अगर कहानी ने पढ़नेवालों के ऊपर अपना एक समूचा प्रभाव—टोटल इम्प्रेशन—नहीं छोड़ा तो उसकी सार्थकता नहीं रही। इस प्रभावान्विति के कारण ही पाठक लेखक को स्मरण रख सकेंगे और वह लेखक की सफलता की निशानी होगी।

× × ×

पुस्तक-रूप में कहानियों का यह मेरा पहला संग्रह है। 'समय-समय पर विभिन्न पत्रिकाओं में ये कहानियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। संकलित रूप मे एक स्थान में उन्हें ले आने की प्रेरणा मेरे अभिन्न मित्रों ने दी जिनकी शुभेच्छाओं से ही मैं पनपा हूँ। चीज़ आपके सामने है। कैसी बन पड़ी है—यह तो आप ही बतायेंगे या समय बतायेगा। पर इतना तो निश्चित है कि जो कुछ मेरे सामने आया है उसे परखने की चेष्टा मैंने की है। भरसक जागरूक रहा हूँ। अपनी कमजोरियों के प्रति सजग और औरों दुर्बलताओ के प्रति खूब ''जो कुछ रहा हूँ उसे ही मैंने व्यक्त किया है। वातावरण के अनुरूप बाज-बाज जगहों पर चालू ऑगरेजी शब्दों का प्रयोग जो उस जिंदगी से घुले-मिले है—मैंने बेजा नहीं समझा है। कहानियों मे आपको मजा जरूर मिलेगा इतना मै कह सकता हूँ।

मई, १९४५ — इ० शं० मिश्र

बड़ी पियरी, काशी

— परिचय —

— गहरि गहरि नदिया गहरानी —

❀ ❀ ❀ ❀

पढ़ने का समय : १२ मिनट

ब्राडकास्ट : आल इंडिया रेडियो स्टेशन, लखनऊ

रचनाकाल : १६३८

प्रकाशित : 'चाँद'

ईसामसीह के हजारों सैकड़ों वर्ष बाद !

सन् १९३७ की बात है। पूस का महीना था। ससुराल जाना निहायत जरूरी था। शादी थी; वह भी किसकी ? मेरी खासो-खास साली की। मेरी श्रीमती भी पूरे तिरसठ दिन से नैहर टिकी हुई थीं। उनको भी विदा कराकर लाना था। एक पन्थ दो काज थे, लिहाज़ा रात को मेल से चल ही पड़ा। दूसरे दिन सुबह चाय के वक्त तक 'एफ० इन ला' के यहाँ दाखिल था।

मेरी एक, नहीं सिर्फ एक जोड़ी सालियाँ थीं। एक का नाम था सुश्री सरोज, पर मेरे लिए तो बस 'सरो'। उस साल वह इंटर-मीडिएट का इम्तहान देनेवाली थी, उसी की शादी थी। उम्र में मेरी श्रीमती से महज दो साल छोटी थी, लेकिन देखने में जरूरत से ज्यादा तन्दुरुस्त ! दूसरी को मैं कहता था 'शम्मो'। वह अभी कुल 'नाइन्थ' में पढ़ती थी, शायद पन्द्रहवाँ साल चल रहा

था। तितली की तरह चञ्चल, आबेरवाँ की तरह नाजुक और जवानी की तरह अल्हड़! ऐसी थी वह शम्मो। कुल कैंची-पेची मिलाकर मेरे कई साले थे। फैमली खासी बडी थी। मेरे पहुँचते ही सबों ने मिनटों मे मेरे आने की खबर घर भर में 'ब्राडकास्ट' कर दी—

'जीजा जी आ गए···'

'जीजा जी आ गए ··'

'फरूखाबादवाले जीजा!'

एक तरफ से रट लगा दी, दनादन ताबड़तोड़ शोर मचाया। नाक में दम! खुदा पनाह दे इन छोटे छोटे, नन्हें नन्हें हर किस्म के बच्चों से! ऊपर से देखने में बड़े भोले और अच्छे लगते हैं, लेकिन रोने में पल्ले सिरे के नम्बरी जिद्दी! जहाँ एक दफा वीदुर काढ़कर रोने का पोंपा ढीला, फिर तो पुरानी रिवाज की औरतो के भेंटने की रुलाई को भी मात कर देते है। चाहे लाख समझाओ, पुचकारो, फुसलाओ — 'राजा बेटा' 'राजा लड़का' 'मान जा'' अ-ओं' वह देखो वह···गटापारचे का बबुआ · लोगे ?'

लेकिन 'न', क्या मजाल जो चुप हों।

मैंने देखा मेरी छोटी साली साहिबा परदे की आड़ से झाँक रही थीं। मैंने पुकारा—

'शम्मो'···

'सुनो तो··अभी से लगीं तुम मुझसे शरमाने। अरे अभी तो तुम्हारी शादी भी नहीं हुई।'

मजाक करते हुए मैंने चुटकी ली, अपने बेढब रिश्ते से वाकई मैं लाचार था। क्या मैं कभी शादी की रात भूल सकता हूँ, जब कि कोहबर मे इन सबों ने अपनी महल्लेवाली मुसम्मात कमसिने-हमजोलियों के साथ गुट्ट बाँधकर मुझे बेतरह तग किया था। मेरी

बातो से शम्मो एक दफा शर्मा तो गई, पर झेंप मिटाने की खातिर हँसते हुए कहा—'नमस्ते'।

उसकी नाक को हिलाकर उसके सुर्ख गुलाबी गालो पर एक हल्की सी चपत जमाते हुए मैने पूछा—

'अच्छी तो हो ?'

अपनी शरारती आँखो को नचाकर उसने जवाब दिया—

"चलिए, भीतर आपको 'बड़ी जीजी' बुला रही है।"

× × ×

सरो की शादी मे मै उसके पहनने के लिए रेशमी सलवार, रेशम की ही बारीक कमीज, जरी की मखमली सदरी, बुँदकीदार फिरोजी रग का हल्का झिलमिल दुपट्टा और माथे मे लगाने के लिए काशी की मशहूर चमकती हुई पीली टिकुलियाँ ले गया था। सौगात को देखकर सरो तो मुसकराने लगी; लेकिन मेरी श्रीमती ने खुश होने के बदले उल्टे मुझे डाँटना शुरू किया—

'बैठे बैठे आपको बस यही खुराफात सूझती है। भला यह सब सरोज पहनेगी ?...'

चट से बात काटकर दलील पेश करते हुए कहा—

"इसमें हर्ज ही क्या है? जब तुम चाइना सिल्क का सूट डॉट सकती हो तो फिर सरो के जरा सलवार पहन लेने में ऐसी कौन सी बुराई होगी...और न होगा तो मै इसके लिए इसके भावी 'उनसे' खास इजाजत दिलवा दूँगा। उनमें अगर रंगीनी तबियत की रत्तीभर भी बू होगी तो वे कभी इस बारे मे 'चूँ' नहीं कर सकते।"

सूटवाली बात से श्रीमती तो एकदम कन्ने से कट गई। 'वीक प्वाइंट' था। अब आगे उनको कुछ कहने की गुंजाइश न थी।

इधर 'उनके' नाम से सरो अलग लजा गई। शम्मो ही एक बची थी, जो लगी कहकहा लगाकर हँसने। उसने मेरी श्रीमती पर जुमला कस ही तो दिया—

'जीजी, जीजी! आपने यहाँ पर कभी सूट नहीं पहना। एक दिन पहनिए तो देखूँ कि आप कोट-पतलून और टाई में कैसी लगती हैं?'

शम्मो की बात की ताईद करते हुए सरो शायद कल्पना करने लगी—

'मैं, सलवार, कमीज, सदरी, दुपट्टा में कैसी खिलूँगी उनके सामने!'

शम्मो से मैंने कहा—

'हँसती क्या हो, दूसरे साल तुम्हारी ही शादी का नम्बर आयेगा··· तुम्हारे लिए तो मैंने सोच रक्खा है—अद्धो का नरम कुर्ता, चूड़ीदार चुस्त पायजामा और उस पर कामदार जयपुरी जोड़ा!'

वह 'ब्लश' कर गई, बात पलटते हुए मैंने सरोज से कहा—

'देखो सरो, मैं बड़े हौसले से ये सब चीजे लाया हूँ। हाँ खास-कर बिदाईवाले रोज तुम्हें इन्हीं कपड़ों को पहनना होगा। तुम्हें मेरी कसम।

सरोज से जवाब मिला—

"मुझे स्वीकार है लेकिन एक शर्त पर, जब 'जीजी' को सूट पहनाइए और आप चौड़े पाट की जनानी साड़ी पहनिए।"

'खूब! क्या जवाब दिया। मानना पड़ेगा, तुम लोग जनाना ही दिमाग रखती हो।'

इतने में शम्मो एक बनारसी टिकुली निकालकर मेरे माथे में लगाने की कोशिश करती हुई बोली—

'जीजाजी, देखिए यह टिकुली आपको जँच जाएगी। मैं सच कहती हूँ। न हो तो शीशे मे देख लीजिए।'

लो, अब नहीं तो अब बना, भला मै शम्मो को टिकुली लगाने से कब मना कर सकता था। उसकी तबियत रखना 'उसके लिए तो सब कुछ माफ था, मेरे मुँह से निकल पड़ा—'आइने की क्या जरूरत है ? तुम खुद किस आइने से कम हो।'

× × ×

शादी मे बड़ा हंगामा था, बड़ी धूमधाम थी, खूब चहल-पहल और भभ्भड़ ! कुछ बदइन्तजामी भी थी। मुझे तो कुछ करना-धरना था नहीं। वहाँ पर तो मेरी हैसियत थी दामाद की। नौशा साहब से दो चार बातें जरूर हुईं। हजरत ज्यादा खुले नहीं ; लेकिन मै ताड़ गया। शौकीन तबियत के जीव थे, अभी जरा कुछ लड़कपन था, यूनीवर्सिटी से नए नए निकले थे। घर में रुपया काफी था, कोई परवाह तो थी नहीं।

शादी हुई; लेकिन 'गौना' नहीं हुआ, क्योकि सरोज, पर अब तो बाकायदे सुहागिन मिसेज हजरत, को मार्च में सालाना इम्तहान देना था। मैंने हजरत से हार्दिक सहानुभूति प्रकट की, खैर किसी तरह बारात बिदा हुई, मैंने भी चलने की सोची। लेकिन अभी रुखसती के लिए मेरी श्रीमती जी तैयार नहीं थीं। औरतो का पचड़ा। कहा–

'दो दिन और ठहरिए।'

शम्मो ने भी जोर बाँधा, मचलते हुए बोली—

"वाह ! अभी तो आप ने किसी दिन मुझे सिनेमा दिखलाया ही नहीं, न साथ 'शापिंग' की ?" लाचारी थी, मजबूरी थी। दो दिन के लिए और रुकना पड़ा। मै सोचता, आखिर शम्मो को मुझसे क्यों

दिलचस्पी थी ? वह अकसर मुझसे लगती, मुझे छेड़ती। मैं भी कुछ कुछ समझने की कोशिश करता।

उसी दिन तो ··।

शाम हो चुकी थी, टहलते टहलते हम लोग काफी दूर गंगा-किनारे तक निकल गए, बढ़िया तरावटी हवा बह रही थी, कुछ नरमी लिए हुए। ऊपर आकाश में चन्द्रमा खिला था—शान्त, मूक, उज्ज्वल। नीचे नीले जल मे चाँदनी लोट रही थी। जल में लहरें थीं और थी चचलता, तरंग, हिल्लोर और लालसा!

मैं सोचने लगा—शम्मो में भी तो येही सारी बातें··कपूरी रंग लिए हुए लम्बे 'कद' का सलोना सा चेहरा। भूरी भूरी तैरती हुई सन्देश से भरी हुई वे दो सजीव आँखें। उल्टे पल्ले पर ली हुई साड़ी पर कुसुमो की कलियों से गुँथी हुई चोटी में लटकता हुआ रंगीन फुंदना··! सचमुच वह कितनी अच्छी लग रही थी। मैंने उसकी तरफ भरपूर देखा—वह कुछ गुनगुना रही थी। उसने राग छेड़ दिया—

'गहरि गहरि नदिया गहरानी···।'

मैंने सोचा—नाव किनारे बँधी हुई है। क्यों न उसे गंगा के पवित्र जल में छोड़ दूँ? खुद ही खेऊँगा, शम्मो बैठी हुई गाना गाएगी, मेरी छोटी सी नैया जल में हिलेगी, डुलेगी, थिरकेगी!

शम्मो का गाना जारी था।

'पवन चलत पुरवैया···।'

'गहरि गहरि······!'

उसने गाना बन्द कर दिया।

मैंने कहा—'शम्मो।'

वह चुप थी।

मैंने दुबारा पुकारा—'शम्मो।'

वह फिर चुप थी।

न जाने उस पार वह क्या देख रही थी। उसी तरफ देखते हुए उसने कहा—

"जब आप मुझे 'शम्मो' कहकर पुकारते हैं तो आपके मुँह से बहुत अच्छा लगता है।"

'सच?'

नशीली आँखों से वह मेरी तरफ देख रही थी। मैं भी रूप की छलकती हुई मदिरा आँखों से पी रहा था। मेरे अंदर हलचल मची हुई थी ··।

मुझसे जैसे किसी ने कहा—

'क्या कर रहे हो? ··· वह बाला है··· नादान है, ··· उसकी तरफ··· इस तरह··· मत देखो ··· तुम्हें कोई हक नहीं ···!'

मै सोचने लगा—यौवन और सुन्दरता? ··· कितनी व्यापक होती है। ··· शरीर और मस्तिष्क को एकदम मादक बना देती है, कुछ क्षण के लिए सब कुछ भूल जाना, जानकर अनजान बनना, यहीं तो स्त्री और पुरुष की हार-जीत होती है, मेरी अंतरात्मा ने मुझे सँभाला ··· वर्ना मैं ···!

शम्मो बोल उठी—

'क्या सोच रहे है जीजाजी?'

"कुछ नहीं ·· चलो अब चलना चाहिए। तुम्हारी 'बड़ी जीजी' रास्ता देख रही होगी, देर भी हो गई है"—मैंने कहा।

शम्मो ने मेरी तरफ ताका।

उफ! कितनी मस्ती थी, उन आँखों में। मैंने 'सजेस्ट' किया—

'काफी ठंढक पड़ रही है। जाड़ा लगता हो तो लो मेरा चेस्टर पहन लो।'

"नहीं, मैं नहीं पहनूँगी, घर चलकर 'बड़ी जीजी' को पहनाइएगा"—फौरन उसने जवाब दिया।

कोट की जेब से दस्ताना निकालते हुए मैंने कहा—

'अच्छा लो दस्ताना पहन लो।'

'नो।'—मुसकराते हुए वह अपना शाल ठीक करने लग गई।

पूरबी हवा की चाल धीमी हो चली थी। जल मे धीरे धीरे स्थिरता आ रही थी। नशा उखड़ चुका था।*

❀ ❀ ❀ ❀

---
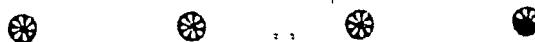
* 'आल इंडिया रेडियो' की अनुमति और सौजन्य से प्रकाशित। इस कहानी का सर्वाधिकार 'आल इंडिया रेडियो' को है।

— प्रणय-तीर्थ —

⊛ ⊛

पढ़ने का समय : सिर्फ २ मिनट

रचनाकाल : १६४०

पठित : प्रसाद-परिषद्, काशी

प्रकाशित : 'रसीली कहानियाँ'

एक पुरुष है—सोम।

एक स्त्री है—लतिका।

पुरुष चित्रकार है, स्त्री कवयित्री।

पुरुष और स्त्री का जीवन एक दूसरे से जुड़ा हुआ है।

चित्रकार और कवयित्री का जोड़ा कुछ बेजा नहीं है।

दोनो कलाकार मालूम होते हैं।

पर वास्तव मे कोई कलाकार नहीं है।

दोनो प्रेम के छायावादी पुजारी हैं।

—लेकिन आधुनिक युग में रहते हैं।

उन्हें मुसलमानो का प्रणय-तीर्थ आगरे के ताजमहल के दर्शन करने का शौक चर्राता है।

× × ×

आगरा—

लतिका ताजमहल को देखकर भावुक हो उठती है। सोम होटल में वापस आकर ताजमहल की चित्रकारी करने लगता है ''।

होटल के सामने एक घर है।

उस घर में एक कवि महाशय रहते हैं।

कवि 'विडोअर' है।

कवि जी की स्त्री ने विश्व के बंधन से मुक्त होकर अपने पति को अनंत वेदना की प्रेरणा और कविता की देन दी है।

तभी तो।

उस घर में से।

बेला करुणा स्वर में रोती है''''''।

कविता क्रंदन करती है''''''।

सोम और लतिका को इन स्वरों में ताजमहल की आत्मा की कराह से बढ़कर बेला बजानेवाले कवि के टूटे हुए हृदय की अमरता बिखरी मालूम पड़ती है।

× × ×

कविता की तरह कोमल स्त्रियों की एक खास निशानी है कि वे अस्वस्थ रहें।

लतिका भी उन्हीं में से एक है।

सोम लतिका की मृत्यु की कल्पना से सिहर उठता है'''।

तब ? फिर ?

यह सब—प्रणय-तीर्थ, चित्रकारी, कविता, कलाबाजी वगैरह वगैरह'''।

सब—कुछ नहीं।

सोम के लिए तो दुनिया माइनस लतिका बराबर जीरो होगी।

वह मनुष्य है।

मनुष्य होकर रहना चाहता है। अपनी लतिका को खोकर वह कलाकार नहीं बनना चाहता। उसकी कला हाड़-मांस की ठोस लतिका है।

और वह।

वैसी ही बनी रहे—हमेशा।

उसकी तबियत प्रणय-तीर्थ को देखकर भर गई।

वह अपनी लतिका को लेकर वहाँ से भागना चाहता है—फौरन।

× × ×

अस्वस्थ लतिका।

वह नारी है।

क्या उनके प्रणय की साध पूरी करने के लिए वह हमेशा ज़िंदा रह सकेगी?

संदिग्ध नारी का हृदय एक बार रो उठता है।

लतिका के आँसू में सब कुछ मौजूद है : दुनिया…ज़िंदगी…प्रणय-तीर्थ।*

❀ ❀

* इस कहानी की 'वस्तु' के लिए 'श्री दिलीप' का आभारी हूँ।

— गल्प —

❁

पढ़ने का समय : १० मिनट

पठित : प्रयाग-विश्वविद्यालय की गल्प प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार द्वारा पुरस्कृत

रचनाकाल : १९३७

प्रकाशित : 'माधुरी'

प्रयाग-विश्वविद्यालय में गल्प सम्मेलन होनेवाला था—

विजय ने भी एक गल्प लिखने की सोची।

जब वह गल्प लिखने बैठा तब उसे कुछ समझ ही में न आया कि क्या लिखूँ? कैसे लिखूँ...? बेचारा विजय इसी उधेड़-बुन में पड़ा था।

होस्टल के कमरे में से बैठे बैठे उसने देखा कि ताँगे पर बैठी हुई लड़कियाँ रंग-बिरंगी साड़ी पहने हुए यूनीवर्सिटी पढ़ने जा रही हैं और एक सज्जन साइकिल पर ताँगे का पीछा कर रहे हैं।

विजय ने सोचा, क्यों न मैं विद्यालय के लड़के-लड़कियों के 'लव रोमांस' पर ही कहानी लिखूँ। वह अपनी मित्र-मंडली में अकसर सुना करता कि विद्यालय की लड़कियाँ 'रोमांस' पसंद करती हैं......।

कथानक बेजा तो न होगा। विजय सोचने लगा कि कहानी की नायिका कैसी होगी।

सुंदर तो अवश्य होगी।

—परंतु सुंदर तो बहुत होती है। उसमें कुछ विशेष आकर्षण हो जिससे छात्रगण उसकी तरफ अनायास ही आकर्षित हो जायँ।

काली काली अंगूर जैसी आँखें हो—मस्त, मादक। देवदास की पारो की तरह उसकी कोमल आकृति हो। वय हो केवल सत्रह साल। बी० ए० मे पढ़ती हो। जरा चुलबुली हो। कद बहुत लंबा न हो—यही पाँच फुट साढ़े तीन पौने चार इंच तक। बस। अल्हड़पन गजब का हो। सबसे बढ़कर उसकी मुसकराहट हो। देखने में एक चीज हो—नुमाइशी।

अब विजय नायिका का नाम सोचने लगा।

चम्पा···चमेली···जूही··अनारकली कुमारी शर्बती··मिस मुन्नी··कल्लो की माँ··आदि उसने कितने नाम सोच डाले। कोई जँचा नहीं। नायिका का कोई फैशनेबुल नाम होना आवश्यक है··इतने मे किसी ने दरवाजा खटखटाया।

कौन ?

बाबूजी···!

विजय ने उठकर देखा—सामने अचार वाला खड़ा है।

'अचार चाहिए बाबूजी ? बहुत अच्छे है। सब किस्म के··· ।'

कहाँ तो बाबूजी नायिका का नाम सोच रहे हैं—कहाँ अचार ! सारा 'मूड' बिगड़ गया। उस दिन वह कुछ न लिख सका। दिनभर नायिका का नाम सोचता रहा।

× × ×

दूसरे दिन—

बड़ी तत्परता के साथ विजय अपनी गल्प लिखने बैठा।

उसने नायिका का नाम रखा—मिस बरूचा।

हिरोइन तो मिल गई, अब ठहरा सवाल हीरो का। मिस बरूचा जैसी नायिका के लिए नायक भी तगड़ा होना चाहिए। नायक ऐसा हो जिसमें अपील हो। देखते ही लड़कियाँ मुग्ध हो जायँ।

आजकल के फैशन के अनुसार मूँछें नदारद हों। कुछ कुछ भूरापन लिए हुए आक्सफोर्ड फैशन के बाल हो। जरा सी लटकी हुई कलम हो। काश्मीरी चेहरा हो। लांगक्लाथ का चौड़ी मोहरी का गरारीदार पायजामा, महीन छालीदार बनियाइन, इसके ऊपर तंजेब का सफेद चुन्नटदार कुरता; पैरों मे मखमली नागरा, सर पर लखनउवा दुपलिया टोपी इस तरह पहनी हो कि मालूम पड़े कि गिर रही है परंतु वास्तव मे न गिरे।

नायक का यही पहनावा हो। अँगरेंजी मे एम० ए० हो। बोलने-चालने मे, खेलने-कूदने में तेज हो। देखने में—स्मार्ट। टेनिस खेलता हो। सिनेमा देखता हो। ब्रिज का शौकीन हो।

अपने ऐसे नायक का नाम विजय ने रखा—प्रेमकुमार।

इसके आगे विजय ने सोचा कि प्रेमकुमार और मिस बरूचा मे प्रेम कैसे कराया जाय? पहली ही बार एक दूसरे को देखने से प्रेम की उत्पत्ति हो, अँगरेजी में जिसको कहते हैं—'लव ऐट फर्स्ट साइट।'

विजय सोचने लगा कि विद्यालय में अखिल भारतवर्षीय वाद-विवाद हो। लड़कियाँ भी वाद-विवाद सुनने आती है। मिस बरूचा भी आएँ। डिबेट में प्रेमकुमार का भाषण सबसे अच्छा हो। मिस बरूचा की आँखे प्रेमकुमार से लड़ जायँ। दिल ही तो है—प्रेम के ऊपर आ जाय...।

लेकिन लुत्फ तो तब आए जब कि प्रेमकुमार का झुकाव उसकी तरफ न हो। मिस बरूचा कभी निर्निमेष, कभी कनखियों से बार-बार प्रेम की तरफ देखें। वह यह जानता हुआ भी कि मिस बरूचा मेरी तरफ देख रही है, उनकी तरफ न देखे। मिस बरूचा के भावों से ऐसा प्रतीत हो कि वह चाह रही है कि प्रेमकुमार किसी न किसी बहाने आकर उसकी बगल में बैठ जायँ, उससे बातें करें। पर प्रेमकुमार जहाँ बैठा हो वहीं अकड़कर बैठा ही रहे। टस से मस न हो। दिखला दे कि मनुष्य भी इस संसार में अपना कुछ अस्तित्व रखते हैं। अगर लड़कियों को अपने ऊपर नाज रहता है तो प्रेमकुमार को भी अपने ऊपर नाज है।

वाद-विवाद खतम हो। बरूचा प्रेमकुमार के पास पहुँच कर अपनी आटोग्राफ की किताब और पार्कर फाउंटेन पेन थमाते हुए कहें—

'भीड़ बहुत ज्यादा है। आप कृपाकर सभापति महोदय सर राधाकृष्णन् का आटोग्राफ ले लीजिए। मैं बाहर पोर्टिको मे आपका इन्तजार करूँगी।'

'थैंक्स'

मिस बरूचा का यह कहना और उनकी साड़ी का उनके सिर पर से अपने आप ही धीरे धीरे खिसकना।

कोमल जाति—फेअर सेक्स—की जीत हो।

प्रेम चुपचाप बरूचा से आटोग्राफ बुक ले ले।

× × ×

बरूचा और पी० के० में प्रेम का बीज तो विजय ने बो दिया। इसके उगने और फल निकलने की देर थी…।

विजय सोचने लगा कि इसके पश्चात् प्रेमकुमार और मिस बरूचा में 'नमस्ते' का सिलसिला चल पड़ेगा और विद्यालय मे किसी न किसी बहाने अक्सर मिलेंगे''फिर तो कभी यूनियन-आफिस में, कभी इंगलिश-डिपार्टमेंट मे, कभी पुस्तकालय में बैठे घंटो, आपस में न मालूम क्या क्या बातें करेंगे। मिस बरूचा का प्रेम की तरफ झुकाव बढ़ता जायगा'''।

संसार मे किसी से प्रेम किया जाना कितना सुखद है—कितना मधुर। प्रत्येक युवती की आन्तरिक अभिलाषा यही होती है कि कोई उससे प्रेम करे—कोई उसका सच्चा प्रेमी हो, जो उसके लिए अपने हृदय में अनुभव करता हो। मिस बरूचा भी यही चाहती थी। स्वाभाविक ही था। युवावस्था थी। पहला झोंका—पहला प्रेम। आज मिस बरूचा प्रेमकुमार के ऊपर बुरी तरह आकर्षित थी। वही मिस बरूचा जिसने विद्यालय के कितने छात्रों को अपने सौंदर्य के घमंड में ठुकराया था। वही मिस बरूचा आज प्रेम के प्रेम की भिक्षुणी थी। ईश्वर की लीला अपरम्पार है। अपना सब कुछ भी अर्पण करके अगर वह प्रेम को पा सकती''''''।

विजय नायिका के हृदय की अवस्था सोचने लगा—

मिस बरूचा अकेले बैठी बैठी घंटों सोचती और नाना प्रकार की कल्पनाएँ करती। कल्पनाएँ पागल बना देतीं और उस पागलपन में उसे बड़ा सुख मिलता। वह सोचती—ईश्वर ने प्रेमकुमार को इतना आकर्षक क्यों बनाया? वह मुझे इतने अच्छे क्यो लगते है? क्या प्रेम सचमुच मेरे हो सकते है? क्या मैं उनके योग्य हूँ? उनकी आँखें कितनी भावुक हैं—कितनी निराली। भला वे भी कभी मेरे विषय में सोचते होगे। जब मिलने को कहते हैं तो रह-रहकर हृदय में गुदगुदी क्यों होती है? क्यों उनसे बातचीत करने की, उनसे मिलने की, उनके साथ सिनेमा देखने

की इच्छा होती है ? किसी बात में तबियत ही नहीं लगती...!

विजय ने सोचा—प्रेमकुमार और बरूचा के प्रेम की बात विद्यालय में फैल जायगी। छिपी तो रह नहीं सकती। लड़के आपस में तरह-तरह की बातें करेंगे—

'आजकल तो प्रेमकुमार की न पूछो..'

'पाँचों उँगली घी मे है।'

'सुना है, आफर आया है..'

'कहाँ से ?'

"फिल्म कम्पनी 'ज्वाइन' करने के लिए। एक हजार रुपये मासिक वेतन अभिनय करने के लिए शुरू में मिलेंगे।"

'उनके साथ फिर प्रेमकुमार भी जाएँगे...'

'अच्छा है। मिस बरूचा जैसी सोसाइटी गर्ल्स की फिल्म-कम्पनी में जरूरत भी है...'।

'मैंने तो सुना था कि वे कलकत्ते जा रही हैं—शांतिनिकेतन में नृत्य सीखने और प्रेमकुमार भी वहाँ पर चित्रकला सीखेंगे।'

'यार अगर मिस बरूचा चली गई तो विद्यालय तो सूना हो जायगा'।

'वाह ! यह तो संसार है। आना-जाना तो लगा ही रहता है।'

'मिस बरूचा अगर चली गई तो इनकी जैसी कितनी आयेंगी।'

'घबराते क्या हो—यूनीवर्सिटी में पड़े रहो। देखा करो।'

'तुम लोगो को सच्ची खबर तो मालूम नहीं—लगे हवा में उड़ने''अरे आजकल बरूचा का पुराना प्रेमी, होनेवाला आई० सी० एस० आया हुआ है उसी से मिस बरूचा की शादी होगी।'

'फिर प्रेमकुमार का क्या होगा ?'

'होगा क्या ? बैठे बैठे टापा करें।'

× × ×

प्रेमकुमार का विद्यालय में चलना-फिरना दूभर हो गया। जो कोई मिलता वही दस बातें सुनाता, आवाजें कसता, बनाता। प्रेम चुपचाप सहता। लड़के इधर प्रेम को बनाते, लड़कियाँ उधर बरूचा को बनातीं। अन्त में यहाँ तक नौबत आ गई कि एक दूसरे का मिलना बोलना मुश्किल हो गया। देखते देखते परीक्षा के दिन आ गए। बरूचा का बी० ए० फाइनल था और प्रेमकुमार का ला प्रीवियस। जिनकी परीक्षा नहीं भी हो रही थी ऐसे विद्यार्थी भी पेपर खतम होने के समय दस बजे सिनेट हाल के इर्द गिर्द लड़कियों के दर्शन के फिराक में चक्कर लगाते हुए दिखलाई पड़ जाते थे। प्रेमकुमार नजर आते तो टाप के लड़के इन्हें देखकर खोंस देते या कुछ फिकरेबाजी चल जाती। लड़कियों का गिरोह भी एक नजर प्रेमकुमार पर डालने से बाज न आता। मिस बरूचा अगर साथ होतीं तो उन्हें किसी प्रकार उसकाकर संकेतों से बतला देतीं कि तुम्हारे 'वह' वहाँ है और मुसकरा देतीं। बरूचा 'सेल्फ कांशस' होगी। लड़कों में कितने अभी से यही निश्चय करके बैठे थे कि दूसरे वर्ष एम० ए० में वे वही विषय लेंगे जो मिस बरूचा लेगी या जिसमें लड़कियों की अच्छी संख्या होगी ···।

विजय ने सोचा कि अनंत जीवन का क्रम तो चलता ही रहेगा दूसरे वर्ष जब गरमी की छुट्टी के बाद विद्यालय खुलेगा तो फिर वही वातावरण—वही पहले जैसी चहल-पहल लड़के लड़कियों के झुंड की तरफ उत्सुकता से देखते और लड़कियाँ लड़कों की तरफ, पर कुछ संयत रूप में। उनमें कितनी सूरतें दृष्टिगोचर होतीं, पुरानी नई। एक से एक बढ़कर। एक से एक अच्छी। पर उनमें मिस बरूचा बी० ए० न दिखलाई देतीं ········!

विजय की कहानी समाप्त हुई।

अब रहा सवाल पढ़ने का। गल्प-सम्मेलन में बड़ी भीड़ होती।

प्रोफेसर, लड़के, लड़कियाँ सभी आते। लेक्चर थिएटर खचाखच भरा रहता। विजय सोचने लगा कि अगर कहीं वह पढ़ी लिखी लड़कियो के सामने गल्प-सम्मेलन में गल्प पढ़ते समय नरवस हो गया तो बड़ी भद होगी। इतने बड़े जनसमूह में विजय के लिए गल्प पढ़ना एक समस्या थी।

—आटोग्राफ—

पढने का समय : १५ मिनट

पठित : हिन्दी-साहित्य-समिति, प्रयाग-विश्वविद्यालय

रचना काल : १९३७

प्रकाशित : 'तरंग'

शाम होने जा रही थी। दिल बहलाने के लिए टहलता हुआ चौक को चल पड़ा। 'टाकी हाउस' के रेस्टराँ में दोस्तों से मुलाकात हुई। नमस्कार-प्रणाम के बाद बड़े तपाक से वे बोले—

'खुशखबरी सुनोगे ?'

'सुनाओ भी'
'कई दिनों से यहाँ वो आई हुई है'
'कौन ?'
'तुम्हें भी पूछ रही थीं...'
'बेकार का तूल ही बाँधते रहोगे...'
'अरे 'वो' सिनेमा की मशहूर...'
उन्होंने नाम लिया। मुझे दिलचस्पी हुई।
वह और यहाँ!
'जिनके अभिनय के ऊपर तुम लट्टू हो वे ही आई हैं'
'यह बेसिर-पैर का मजाक अच्छा रहा'
'मजाक! सामने कार खड़ी है, वो ऊपर सिनेमा देख रही हैं'
'यार बात तो खूब बनाई'
'खैर ड्राइवर से पुछवा दूँ...'
'तब तो मानोगे'
सचमुच वे शोफर से पूछ बैठे!
'देवीजी से किसी तरह भेंट हो सकती है ?'
'वो किसी से नहीं मिलतीं'
शोफर ने नशा-उखाड़ उत्तर दिया।

× × ×

काफी इन्तजारी के बाद जाकर कहीं इंटरवल हुआ।
'चलो ऊपर तुम्हें उनके दर्शन करवा लाएँ'
'नेकी और पूछ-पूछ'
यह तो मैं चाहता ही था। दिल में जरा धुकधुकी थी।

'वो देखो तीसरे वाले 'बाक्स' में बैठी हुई हैं···"

"···'जार्जेट की नीली साड़ी'

मेरे मित्रों ने उनको दिखलाते हुए कहा।

'देखा कि नहीं'

देखते हुए मैंने जवाब दिया—

'हाँ देखा'

पहले आँखें यह मानना नहीं चाहती थीं कि यह सब सच है। वही साक्षात्!

पर हाँ, बात तो सच थी।

× × ×

सिनेमा-हाल में या और कहीं औरतों को छोड़ दीजिए, मरदों का इस तरह झाँकी लेना जरा सभ्यता के विरुद्ध समझा जाता है, फिर भी बहुत से तबियतदार जीव देवीजी के दर्शन कर रहे थे। मैं दर्शकों को भी देखने लगा। इतने में घंटी बजी। अनमना होकर चलना पड़ा। रेस्टराँ में आइसक्रीम उड़ाने की राय हुई। मुझे भी बैठना पड़ा। बातें होने लगीं।

'अभिनय में देवीजी की टक्कर का शायद ही कोई है'

'बिलकुल नपी तुली ऐकटिंग करती हैं'

'और बोलने का ढंग—कितना सादा, फिर भी अनोखा'

'मुँह से निकली हुई बातें चुभ जाती हैं'

आइसक्रीम आ चुकी थी। चाव से हाथ साफ करने के लिए लोग टूट पड़े—साथ में तारीफ के पुलिंदे।

'बढ़िया जमी है'

'नफीस'

'ए, वन'

'व्याय' 'व्याय'''

'''एक एक प्लेट और लाओ'''

'यह तो देवीजी के खाने लायक है'

एक हजरत ने अपनी राय यहाँ तक दे डाली।

बहरहाल मुझे तो कुछ ज्यादा पसंद न आई। इसी तरह कुछ देर तक तफरीह होती रही। मगही पान जमाया गया। ऊपर से चौसठ रुपये सेर वाला जर्दा, चूना और गीली सुपाड़ी। साढ़े आठ बजे। रवानगी की सूझी। लोगों ने अपने अपने घर का रास्ता नापा। मैं भी अपने मित्र की साइकिल के पीछे बैठ गया। चौक में रोज की तरह खूब चहलपहल थी। रास्ते में लाल पगड़ी ने टोका—

'बाबूजी'''ऐसी ज्यादती'''दो सवारी साइकिल पर'''

मै उतर पड़ा। किसी ने कहा—

'कांग्रेस का राज्य है, कोई बात नहीं'

मैंने सोचा। कांग्रेस के बारे मे लोगों के अजीब खयाल है। जरा दूर पैदल चलने के बाद फिर साइकिल के पीछे बैठ गया। खद्दर की दूकान आई। मित्र ने कहा—

'भाभी साहिबा के लिए एक जोड़ी धोती खरीदनी है'

'अरे साड़ी कल खरीदना'

'नहीं यार, जरूरी है। कल वो सुबह सात बजे देहरा से चली जायॅगी'''

'अच्छा तो फिर फुरती करो। मै जरा देवीजी का आटोग्राफ लेना चाहता हूँ। आज मौका अच्छा है। घर से आटोग्राफ-बुक लेकर पहुँचना है—फस्ट शो खतम होने के पहले ही।'

'ऐसा ही था तो उसी जगह क्यो नहीं बतलाया, पहले ही चल पड़ता'

'यों ही कोई खास इरादा नहीं था'

मैंने बात बनाई।

कहीं मिनटों बाद जाकर एक जोड़ी साड़ी पसंद आई। खद्दर की मामूली जनानी धोतियाँ, मत पूछिए काफी मँहगी थीं। दूकानदार लगा उनको अखबार और सुतली से लपेटने ताकि सहूलियत से साइकिल मे लटकाई जा सकें। मुझे अनकुस मालूम हो रहा था। देर हो रही थी। आठ बजकर चालीस हो चुके थे। आठ बजकर पैंतालीस पर घर पहुँचा। जल्दी से आटोग्राफ की किताब ली। चल पड़ा। जो मै डर रहा था वही हुआ। भुलुवा ने टोक दिया। शकुन ? मिल चुका आटोग्राफ—मैंने सोचा। फिर भी दिल तोड़कर तेजी से सिनेमा पहुँचा। बस, यही पाँच छ मिनट लगे होंगे ज्यादा से ज्यादा। देखा बाहर कार अभी खड़ी है। ड्राइवर बैठा हुआ बीड़ी पी रहा है। तब जाकर जरा जान में जान आई। मारे पसीने के तरातर था। रूमाल निकालकर पसीना पोंछा। कुछ उलझन सी थी, कुछ परेशानी। अभी सिनेमा खतम होने में दस मिनट की देर थी। इधर-उधर चहलकदमी करता रहा कि कब शो खतम हो, कब वो निकले, कब मै आटोग्राफ लूँ। सोचने लगा, उनसे क्या कहूँगा।' कैसे कहूँगा ? कहीं आटोग्राफ न दिया। फिर ? वाह ! मिस अमृत शेरगिल, लीला देसाई, उदयशंकर, टैगोर ऐसे ऐसे कलाबाजों ने तो आटोग्राफ दे ही दिया, फिर देवीजी क्यों न··· ? आटोग्राफ मिल जाने पर तो दोस्तो को शान से देवीजी के दस्तखत का ठप्पा दिखलाकर कहूँगा—देवी का प्रसाद है···यही सब सोच रहा था कि इतने में नौ बजे। शो खतम हुआ। बाहर काफी पब्लिक- देवीजी के दर्शन करने के लिए प्रतीक्षा कर रही थी। सिनेमा की फिल्म के बारे में नुक्ता-चीनी करते हुए लोग निकलने लगे। मैं एक किनारे खड़ा होकर

उत्सुकता से रास्ता देखने लगा कि देवीजी अब निकलीं, अब निकलीं। कुछ देर बाद जब भीड़ छँट चुकी थी देवीजी आईं। ड्राइवर ने मोटर खोली। मैं भौचक्का होकर देखता ही रहा कि इतने में वे मोटर पर सवार हो गईं। उनको पहुँचाने के लिए सिनेमा के मैनेजर साहब भी अपनी तशरीफ का टोकरा मोटर तक लाए थे। इतने में मैं पहुँच ही तो गया। अपनी आटोग्राफ-बुक लिए हुए। देवीजी को दोनों हाथों से नमस्कार करते हुए मैंने आटोग्राफ की किताब और स्वदेशी फाउंटेन पेन बढ़ाया। आशा-भरी भावुक आँखों से उनकी तरफ देखते हुए मैंने आटोग्राफ देने के लिए उनसे प्रार्थना की। उन्होंने मेरी तरफ देखा। जरा सकुचाईं मानों वे आटोग्राफ देना चाह भी रही थीं, नहीं भी। दोनों बातें थीं। कुछ असमंजस सा था—हिचक। इतने में मैनेजर, जो कार की दूसरी तरफ थे, आए, बोले—

'अभी तो आटोग्राफ नहीं मिलने सकता'

'ओ सिर्फ एक, दो, तीन अक्षरों को लिखने मे देर ही कितनी लगेगी। मुश्किल से आध मिनट भी तो नहीं'

वे न माने। मैंने उन्हें हिन्दी में बेकार मनाने की कोशिश की—फिर देवीजी की तरफ देखकर अँगरेजी में कहा—

'प्लीज'

पर वे तो चुप्पी साधे थीं।

मैनेजर ने कहा—

'तेरह को आइएगा। तब तक इनका मालिक आ जाएगा। उनसे पूछकर हम आटोग्राफ दिलवा देगा'

मन में मैंने कहा—'धत् तेरे की, चकमा देता है'

उनसे कहा—'अभी क्या खराबी है'

चंद रुपल्लीवाले मोशाई मैनेजर अकड़कर रोब में आ गए।

'आप आटोग्राफ लेगा तो कई आ जाएगा। ...बिना इनके मालिक के आए आटोग्राफ नहीं मिलने सकता'

बहस करते हुए मैंने कहा--

'सिवा मुझे छोड़कर यहाँ आटोग्राफ लेनेवाला कोई है ही नहीं'

चापलूसी भी की—

'रही मालिक की बात—सो भला आप चाहें और आटोग्राफ न मिले'

लेकिन वह किसी तरह भी टस से मस न हुए। आखिर मैंने देवीजी की तरफ उम्मीदों से देखा। वे उसी तरह मौन थीं—जैसे कोई मोम का खिलौना। उनकी बगल में बैठा छोटा बच्चा अवश्य बड़े गौर से मेरा मुँह देख रहा था। मैं मन में मैनेज़र को कोसने लगा। न जाने कहाँ से यह बीच में आ टपका। मन मे ज्यादा नहीं तो एक आध दर्जन से क्या कम गालियाँ उसे दी होंगी। ...नानसेन्स.. कहीं इस वक्त मुझे बंगला आती होती और मैं उसे चट से बोल देता, तो शायद कुछ फिर सोचा..'यह सब सरासर चलते वक्त बुलवा कर रोकने का असर है—जाएगा कहाँ। मोशाई मैनेजर ने इशारा किया। ड्राइवर ने हार्न बजाया। मोटर चल दी। मैं खड़ा ताकता रह गया। अपना-सा मुँह लेकर मैंने आटोग्राफ की किताब धीरे से जेब में टरका दी। लाउडस्पीकर में से ग्रामोफोन का रेकार्ड बजा—

'दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी—'

हाय .. हाय ..न जाने क्यों लोग मेरी तरफ देख रहे थे। मैं चुपके से घर के लिए चल पड़ा।

कितनी मामूली, कितनी छोटी सी बात थी—आटोग्राफ! मैंने सोचा।

× × ×

मै मुँह लटकाए धीरे धीरे पटरी पर से जा रहा था। रह-रह-कर देवीजी का सकुचाया सा मौन, उस बच्चे का मेरी तरफ मुँह बाकर ताकना, बंगाली मैनेजर की मूँछें, ग्रामोफोन का संगीत—दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी, लोगों का मेरी तरफ दृष्टि गड़ा कर देखना, याद आता। जान पड़ता जैसे देवीजी की कार बस मेरे पीछे ही चली आ रही है। उसके भोपू के किर किर की आवाज मेरे कानों में जोर से गूँज उठती थी। फिरकर देखता तो कहीं कुछ नहीं। हाँ, दूर से आते हुए खुले गहरेबाज मिर्जापुरी टाइप एक्कों के फरहरे घोड़ों की टाप और उनकी गर्दन में पड़ी हुई घुँघुरूदार मालाओं की झनझन झंकार जरूर सुनाई पडती।

रात हो चली थी। सड़क पर मूँगफलीवाला मूँगफली बेच रहा था। खोमचावाला अपनी गुड की पट्टी की तारीफ कर रहा था। दूकानदार धीरे धीरे अपनी दूकाने बढ़ा रहे थे। मंदिर में घंटी बजा-बजाकर कपूर की लवरों से ठाकुरजी की आरती हो रही थी।

'जय सियाराम, भाई जय सियाराम, जय सियाराम' के नारे लगा रहे थे। बाहर पटरी पर एक बुढ़िया औरत आँचल पसारकर भीख माँग रही थी।

'बाबूजी—एक पइसा'

'एक पइसा बाबूजी'

मैं सोचने लगा—देवीजी का जीवन और इस गरीब बुढ़िया का अस्तित्व। यह कितनी गरीब थी, निस्सहाय थी—भूखी। शायद उसके जीवन में अब कोई ऐसा नहीं था जिसे वह अपना कह सके। पौरुख से लाचार, भीख माँगने के सिवा और उसका चारा ही क्या था। जिंदगी के बचे हुए दिनों को किसी न किसी तरह काटना। आज वह दो रोटी के लिए मुहताज थी, तभी न इस तरह भीख माँग रही थी। इतनी बड़ी दुनिया में सचमुच में

वह कितनी अकेली मालूम पडती थी …। मै सोच रहा था—मंदिर में भोग लगेगा पर क्या उसमें से प्रसाद बुढ़िया को भी मिलेगा? भगवान् का भोग तो खासकर मंदिर के संरक्षक हट्टे कट्टे हरमुस्टक पंडों और पुरोहितों के लिए रिजर्व रहता है··क्या कभी बुढ़िया ने जीवन मे क्रेप की साड़ी और वायल का जम्पर पहना होगा? ··क्या वह कभी ब्यूक या लेटेस्ट माडेल फोर्ड के मुलायम गुल-गुलेदार गद्दों पर बैठी होगी? · क्या वह इन सबसे सुखी हो सकती थी? मैं अपने से पूछ रहा था!

लोग इसका क्यों नहीं आटोग्राफ लेते?

मैंने क्यो नहीं बुढ़िग्रा का आटोग्राफ लिया?

जीवन का सच्चा विषाद अभिनय तो बुढ़िया ही कर रही थी। पर वह अपने दस्तखत कैसे करती? शायद उसे क, ख, ग, घ, ङ ··भी लिखने न आता होगा। यही सब सोचते सोचते मेरा आधा से ज्यादा रास्ता तय हो चुका था। घर पहुँचते पहुँचते दस बजा।

रानी मेरी प्रतीक्षा कर रही थी। उसने पूछा—

'कहाँ चले गए थे जो इतनी देर लगा दी'

'सिनेमा की मशहूर अभिनेत्री आई थीं, उन्हीं का आटोग्राफ लेने गया था।'

'कौन सी अभिनेत्री थीं?… उनमें कौन सी विशेषता थी?' —श्रीमती ने पूछा।

प्रश्न सीधा था पर उसके अंदर एक अंतर्ध्वनि थी, मैंने पढ़ा—प्रतिद्वंद्वी के रूप में रानी ने देवीजी की कल्पना की है और ईर्षा के सहज भाव उनमें जाग उठे है।

'तुमने कभी मेरा आटोग्राफ नहीं लिया। मैं किस सिनेमा की अभिनेत्री से कम हूँ…!'

ऐसा कौन सा आकर्षण देवीजी के अंदर है जो उसमें नहीं है, शायद रानी यही सोच रही है। वह आटोग्राफ देखने के लिए उत्सुक है।

'आटोग्राफ कहाँ है ?—देखें।' उसने पूछा।

आटोग्राफ की किताब मैंने उसे थमा दी और अपनी शेरवानी उतारने लग गया···।

खोजने पर भी अभिनेत्री जी का आटोग्राफ उसे जब नहीं मिला तो उसने कहा—

'इसमें तो किसी अभिनेत्री का आटोग्राफ नहीं है ··· ।'

मैंने उत्तर दिया—

'हाँ ··· आटोग्राफ तो नहीं मिला ···पर उससे बढ़कर सत्य जो मुझे मिला।'

'वह क्या ?'—रानी ने पूछा।

बुढ़िया और उसके जीवन का अभिनय मेरी आँखों के सामने था···!

❀

—छाया की बात—

❀ ❀ ❀

पढ़ने का समय : २० मिनट

पठित : प्रसाद-परिषद्, काशी

रचनाकाल : १९३७

प्रकाशित : 'सुधा'

मुझे लोग कहते थे छाया—कुमारी छाया। मैं अपने जीवन के सोलह वसंत पार कर चुकी थी। सत्रहवाँ लगा था। इसी साल मैंने सेकेंड क्लास में इंटरमीडिएट पास करके विद्यालय में बी० ए० ज्वाइन किया था। कहना न होगा मैं बहुत सुंदर थी। चपई रंग, पतले होंठ, रेशमी बाल, लड़कों के शब्दों में 'गजब की आँखें', माथे पर एक छोटी सी बिंदी, यौवन का उल्लास, अल्हड़-पन, चंचलता। यूनीवर्सिटी में आते ही मेरी शुहरत हो गई। रेस्टराँ में, होटल के कमरों में, फील्ड में अकसर मेरी ही चर्चा छिड़ी रहती।

मैं रोज नई किस्म की साड़ियाँ बदलती। जो साड़ी पहनकर आज यूनीवर्सिटी जाती, वह कहीं दो महीने बाद 'रिपीट' होती। पैरों में कभी पाँच नंबर का जनाना बाटा, कभी मखमली चप्पल, कभी कामदार नागरा और कभी ऊँची एड़ी का 'लेडीज शू'।

जब मैं प्याजी रंग की बनारसी साड़ी और उसी से मैच करता हुआ रेशमी जंपर पहनकर कार पर यूनीवर्सिटी पढ़ने जाती, सब लड़के मेरी तरफ देखते। मैं मन ही मन बड़ी खुश होती। कभी 'सीरियस' बनी हुई त्यौरियाँ चढ़ाए रहती, कभी यों ही किसी की तरफ तिरछे देखकर मुसकरा देती। लोग कहते, छाया बड़ी शोख लड़की है। मुझे बड़ा 'नाज' था अपने ऊपर।

जब मैं पुस्तकालय जाती तो कितने मनचले लडके सिर्फ मुझे देखने के लिए लाइब्रेरी जाते, मुझे 'फालो करते'। विद्यालय में भाषण, वाद-विवाद या और कोई उत्सव होता, जिसमें लड़कियो की और खासकर मेरे आने की संभावना होती उस दिन बड़ा 'रश' होता। मेरी वहाँ की उपस्थिति लेक्चर के आकर्षण से कहीं बढ़कर थी। अगर मैं किसी दिन रीजेंट सिनेमा देखने जाती और इत्तिफाक से विद्यालय के मेरे चाहनेवाले भी वहाँ उपस्थित रहते तो वे मेरे ही क्लास का टिकट खरीदकर मेरे पास अगल-बगल बैठने का प्रयत्न करते। मैं मन ही मन उन लोगो की हरकतों पर हँसती। यूनियन का इलेक्शन होता तो कितने कैनवेसिग करने के बहाने ही मुझसे मिलने की कोशिश करते और कुछ नहीं तो एक बुक-मार्क या पैमफ्लेट ही थमाकर चले जाते। क्लास में लड़के मेरे सामने ही वाली सीट पर बैठना चाहते। मैंने खास तौर पर मार्क किया था कि वे खूब टिपटाप रहते। मैं ऊपर से तो कुछ खिची रहती, उन लोगों की तरफ न देखती लेकिन कनखियों से सब बातों का पता रखती। क्लास में मैं स्थिर भी न रह सकती। रह-रहकर बैठने का 'पोज' बदला करती। अकसर साड़ी सिर से खिसक जाती। पैर हिलते रहते। कभी अपनी उँगलिया फोड़ती। प्रोफेसर साहब लेक्चर देते रहते और अगर मेरी तबियत नोट्स लिखने में न लगती तो बगलवाली साथिन को उँगलियों से गोदती···

क्या जीवन था !

× × ×

जब मैं चार-पाँच साल की थी तभी मेरी माँ का देहांत हुआ। मेरे पापा ममी के विषय में दुखी होकर कहते—'ईश्वर की यही मरजी थी, कोई क्या कर सकता था। खैर, मेरे लिए तो छाया ही बहुत है।' पापा मुझे बहुत चाहते थे—बेहद। मुझे किसी बात की कमी न थी, न परवाह। हाँ, कभी कभी मुझे अपने जीवन में एक अभाव सा प्रतीत होता। मैं काफी सयानी हो चुकी थी। मैंने सुना—मेरी शादी ठीक हो रही है! शादी...? मुझे बड़ा कुतूहल हुआ। प्रत्येक अविवाहिता युवती की इच्छा होती है उसे अपने मन लायक जीवन-साथी मिले। मैं सोचती—"वे न मालूम कैसे होंगे? शादी हो जाने के बाद मैं सुश्री से श्रीमती हो जाऊँगी। मेरे भी बच्चे होंगे। मैं 'माँ' कहलाऊँगी ..लड़का होगा। तो उसका नाम रखूँगी 'प्रेम' .. और अगर लड़की हुई तो उसका नाम 'आशा'। अगर वे दूसरा नाम रखना चाहेंगे तो जिद करके अपनी वाली करूँगी। फिर तो अपने 'उनके' लिए भी मफलर और पुलओवर बुनूँगी, बच्चों के लिए मोजा और गुलबन्द..!" शी शी . हैं। क्या सोच रही हूँ! मैं स्वयं झेंप जाती।

दिसम्बर का महीना था। यूनीवर्सिटी क्रिसमस की छुट्टी में बन्द हो चुकी थी। पापा ने मुझसे कहा—'मेरे मित्र का लड़का यहाँ पी० सी० एस० की प्रतियोगिता के लिए आनेवाला है। लखनऊ यूनीवर्सिटी का फर्स्ट क्लास एम० ए० है। वहाँ 'ला' में पढ़ता है। हमारे ही यहाँ ठहरेगा।' मुझे कुछ दिलचस्पी हुई। मैंने सोचा, चलो, अच्छा है, एक शगल रहेगा। उनसे कुछ बातें होंगी। पहली को, दस बजे दिन वे आए। पापा ने उनका स्वागत किया।

ड्राइंगरूम में बैठकर कुछ देर तक बातें होती रहीं। पापा ने मुझे बुलाया। मैं सफेद, बूटेदार साड़ी पहने लेडीज होस्टल जाने को तैयार थी। मेरी सहेलियों ने मुझे नए साल के उपलक्ष में खाना खाने के लिए निमंत्रित किया था। पापा ने उनका मुझसे परिचय कराया। कुमार उनका नाम था। लखनऊ में उनके पिता सबजज थे। मैंने उनकी तरफ देखा। उन्होंने मुझे देखकर नमस्ते किया, आँखें चार हुई। मुझे देर हो रही थी। मैंने जाने के लिए क्षमा माँगी। शोफर कार लिए तैयार था। मैं कार पर बैठकर चल दी। मैं बैठी बैठी सोचने लगी, बेकार के लिए जा रही हूँ। अच्छा तो यह होता कि कोई बहाना कर देती। तबियत में आई कि मोटर घर के लिए घुमवा दूँ। फिर सोचा पापा से क्या कहूँगी? खैर! अभी तो वे कुछ दिन रहेंगे। जल्दी क्या है। लौटकर आने पर बातें होंगी। मैं सोचने लगी, वे काफी अच्छे हैं। दोहरा सा बदन, बड़ी आँखें। क्लीन शेव्ड। ग्रे पैंट और उस पर चेक का रोलदार कोट, मुसकराता हुआ चेहरा ···। वह मुझे बहुत पसंद आए···। मैं सोचने लगी, कहीं इन्हीं से मेरी ···। मैं ब्लश कर गई। इतने में लेडीज होस्टल आ गया। मैंने शोफर से तीन बजे कार लाने के लिए कहा।

मुझमें न मालूम क्यों सुस्ती आ गई। मेरी स्वाभाविक चंचलता, रोज की मुसकान, लड़कियों को बरबस छेड़ने की आदत आज न मालूम कहाँ चली गई। मैं सहेलियों से बातें तो जरूर कर रही थी लेकिन मेरा ध्यान कुमार की तरफ था। खाना बहुत अच्छा था। कई प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजन बने थे—पापड़ का हलुवा, टमाटर की पकौड़ी, पितपापड़े की चटनी। बहुत 'वेराइटी' थी, पर मैंने थोड़ा ही खाया।

लोगों ने मुझसे गाना गाने और वीणा बजाने के लिए आग्रह

किया। मैंने कहा—'मेरा बिलकुल 'मूड' ही नहीं है।' उन्होंने न माना। कहा—'छाया, देखो ये नखरे किसी दूसरे से करना। गाना न गाओ, तो कम से कम वीणा तो बजाओ।' लाचारी थी। मेरी वीणा, उसके बाद कुमारी आर० देशिया का संगीत, लता का वायलीन और सरला का हारमोनियम हुआ। फिर विद्यालय के लड़कों की आलोचना में समय व्यतीत हुआ। तीन बजे, मै चल पड़ी। लोगों ने रोका, कहा—'ऐसी जल्दी क्या है ? बैडमिंटन खेलकर साढ़े पाँच तक जाना।' मैंने कहा—नहीं पापा मेरा टी के लिए इंतजार करेंगे।

मैं कार खुद ड्राइव करती हुई बँगलो पहुँची। कुमार बाहर के कमरे में लेटे हुए अखबार देख रहे थे। मोटर की आवाज होने से वे बाहर देखने लगे। कार से उतरते समय मेरी साड़ी सिर से खिसक गई। मैंने उनकी तरफ देखा। मेरे होठों पर अपने आप मुसकराहट आ गई। उन्होंने भी मुझे देखकर मुसकरा दिया। मै सीधे अपने कमरे में चली गई। पापा सो रहे थे। मैंने सबसे पहले जाकर अपने कपड़े बदले। मेरी तबियत नहीं लग रही थी। यौवन की चंचलता! मन कर रहा था कि कुमार से जाकर मिलूँ, उन से बातें करूँ। मैंने अपने को बहुत रोका। कुछ उलझन सी मालूम हो रही थी। उपन्यास ले पढ़ने बैठी। तबियत ही न लगी। किसी तरह चार बजने को हुए। पापा सोकर उठे। चाय पीने के लिए बुलाया। पापा और कुमार बेकारी की समस्या और 'सोशलिज्म' पर बातें करने लगे। मैं चुपचाप बैठी सुन रही थी। कभी कभी कनखियों से मै कुमार की तरफ देख लेती। बीच मे केवल एक दफा कुमार से उनके प्याले मे चाय डालने के पहले पूछा—'आप चाय में कै स्पून शुगर पीते हैं ?'

'टू ऐंड हाफ।'

टी के बाद पापा टेनिस खेलने के लिए क्लब चले गए। कुमार से मुझसे बातें होने लगीं। उन्होंने मेरा कांबिनेशन पूछा—बी० ए० में मैंने क्या क्या आफर किया है? किन बातों की मुझे हाबी है? क्रासवेट और इलाहाबाद यूनीवर्सिटी की 'लाइफ' कैसी है?

मैंने भी उनसे कैनिग कालेज और इज़ाबेला थॉबर्न कालेज के बारे में तरह तरह की बातें पूछीं। पी० सी० एस० की तैयारी कैसी है? इसके बाद मैंने अपनी लाइब्रेरी दिखलाई। बड़ी देर तक पुस्तकें देखते रहे। कुछ इधर उधर की बातें होती रहीं। वे मुझे इस समय बहुत अच्छे लग रहे थे। ढीली मोहरी का पाजामा, आधी बाँह की सिल्क की कमीज, और उस पर काश्मीरी दुशाला उन्हें बहुत जँच रहा था।

× × ×

दूसरे दिन हमारी यूनीवर्सिटी खुली। उनका भी पहला एसे का पेपर था। मै यूनीवर्सिटी तो गई लेकिन मेरी तबियत नहीं लग रही थी·· क्यों? प्रोफेसर लेक्चर दे रहे थे, मै कुमार के बारे में सोच रही थी। मेरी सहेलियों ने मुझे टोका भी—'छाया तुम आज इतनी चुप क्यों हो?' बात क्या है? तुम्हारे मे आज कुछ 'चेंज' मालूम पड़ रहा है।' मैंने बात बनाई, कहा—'कुछ नहीं यों ही। तबियत ठीक नहीं है।' यूनीवर्सिटी के बाद मैंने म्यूजिक क्लास भी नहीं अटेंड किया। घर चली गई। कुमार अभी तक नहीं लौटे थे। कार उन्हें लाने के लिए गई। मै उनका इंतजार करने लगी, इतने में साढ़े पाँच बजे। मेरे म्यूजिक मास्टर आए। मैंने पूछा—'आपने परचा कैसा किया?' 'एसे और जेनरल नालेज अच्छा हो गया, उम्मीद है, सिक्स्टी फाइव परसेंट मिल जायगा।'

टी वी पीने के बाद बहुत देर तक बैठे हुए बातें करते रहे।

तीन ही चार रोज में हम लोग काफी हिलमिल गए, जैसे वर्षो की मुलाक़ात हो। उस दिन शाम को उन्होने मुझ से वीणा बजाने को कहा। यद्यपि मेरी तबियत स्वय वीणा बजाने को कह रही थी, किन्तु मैंने कहा—'कल आपका पेपर है, आपको पढ़ना चाहिए।' उन्होंने उत्तर दिया—'भला शाम भी कोई पढ़ने का समय है। इसके अलावा पेपर वेपर तो होता ही रहता है।' उन्होंने दीवार पर से टॅगी हुई वीणा उतारी, उसकी खोली निकाली, और वीणा मेरे हाथो मे थमा दी। मैंने बड़ी नफासत के साथ वीणा बजाना शुरू किया। मै सोफे पर बैठी थी, वे मेरे सामने कुर्सी पर बैठे थे। मेरी ऑखें उन्हें देख रही थीं। मेरे हाथ वीणा के तारों पर चल रहे थे। वे भी मेरी तरफ एकटक देखते रहे। मै स्वयं न समझ सकी कि मै हर रोज से कहीं अच्छी वीणा क्यो बजा रही हूॅ। मै पूरे आध घटे तक वीणा बजाती रही। फिर मैने वीणा रख दी।

उन्होने कहा—'सुदर, बहुत सुंदर। छाया, तुमने तो कमाल कर दिया। तुम्हारी वीणा की झंकार सुनकर मै तो दूसरे ही संसार की कल्पना कर रहा था। मै तो अपने को जैसे भूल सा गया।' वे कुर्सी से उठकर, सोफे पर आकर मेरी बगल मे बैठ गए। मेरे कोमल हाथो को अपने दोनो हाथो में लेकर दबाते हुए, मेरी तरफ दृष्टि गड़ाकर, उन्होंने कहा—'छाया, तुम कितनी सुंदर हो, यह कदाचित् तुम नहीं जानतीं·!'

स्त्री के लिए उसके सौन्दर्य की प्रशसा! कितनी बड़ी जीत है। उनकी ऑखों में एक अजीब नशा था, बोली मे मादकता। मेरे शरीर में जैसे बिजली दौड गई। मैं बदहवास थी·····!

× × ×

उस दिन रात भर मुझे नींद न आई। इधर उधर करवटें बदलती रही। रह-रहकर शाम की बात, वीणा की झंकार और कुमार याद आते। मै तरह तरह की बातें सोचती। मैं क्या थी, क्या से क्या हो गई। मेरा सारा घमंड कहाँ गया?···मेरी सुंदरता!···उफ!···अगर मै सुंदर न होती, तो अच्छा था··अगर मुझे वीणा बजाने न आता, तो कितना अच्छा था!···मुझे बड़ा दुःख हो रहा था। भीतर जैसे एक ज्वाला जल रही हो··मैं?··और मेरा इतना अधःपतन! एक दिन में— कुछ मिनटो में!···पापा का मेरे ऊपर कितना विश्वास था! मैंने अपने से अपने को धोखा दिया। मै अपने को कहाँ से समझाऊँ···मेरे हृदय में उथल-पुथल मचा था···मैं मारे लज्जा के गड़ी जा रही थी···मैनें कितनी उच्छृखलता की······!

सब लोग सो रहे थे। मै सिसक-सिसककर रो रही थी। मुझे कुमार के ऊपर क्रोध आ रहा था। उन्होने मेरे जीवन की शांति भंग कर दी··लेकिन उनका क्या दोष था। दोष तो अपना ही था। मैने ही तो उनसे संपर्क बढ़ाया।

दूसरे दिन मै बहुत शर्माई हुई थी। सुबह बहाना करके पापा के साथ चाय न पी। कुमार ने भी नाश्ता अपने कमरे ही में मॅगवाया। मैं यूनीवर्सिटी पहुँची, तो मुझे सब बाते नई मालूम हो रही थीं। हर समय 'सेल्फकांशस् फील' कर रही थी। मुझमें कितना परिवर्तन था।

कुमार मुझसे मिलने की कोशिश करते, लेकिन मैं न मिलती। न जाने क्यो मुझे अब उनसे मिलने मे हिचक मालूम होती। मैं कुछ झेपती। एक दिन, दो दिन ऐसे ही चलता रहा। तीसरे दिन उनका पेपर था, लेकिन वे न गए। जब मै विद्यालय से लौटकर आई, मैने देखा, उनकी हालत अजीब है। उन्होने मेरा

नाम लेकर पुकारा। मैंने उत्तर ही न दिया। पापा ने शाम को मुझे बतलाया—"कल कुमार के दो परचे बिगड़ गए थे, इसलिए आज वह परचा देने नहीं गया। मैंने कितना समझाया। कहने लगा—बैठना बेकार है। आज रात ही को लखनऊ वापस जा रहा है। उसके आने की बड़ी उम्मीद थी। बड़ा 'ब्रिलिएंट कैरियर' था। हमेशा 'फर्स्टक्लास' · ।"

उस दिन रात को वे सचमुच चले गए। मुझे अपने कमरे में कुमार का पत्र मिला। उन्होंने लिखा था—

'·· मैंने तुमसे प्रेम करके बडी भारी गलती की। स्त्रियों का कभी विश्वास न करना चाहिए। तुम इतनी कठोर निकलोगी, इसकी मुझे स्वप्न में भी आशंका न थी। जो छाया मुझसे बातें करने में अपना सौभाग्य समझती थी, उसकी तरफ से आज इतनी उपेक्षा इतनी उदासीनता! मैं इस कठोर सत्य पर विश्वास नहीं करना चाहता, फिर भी करना ही पड़ता है। तुम मेरे लिए एक विचित्र पहेली हो। तुमने मुझे एक सबक सिखलाया, जो मैं अपने जीवन में कभी नहीं भूल सकता। बस।'

पत्र पढ़ा। मैं उन्हें कोस रही थी। वे उलटे मुझे दोषी बना रहे थे। दोषी कौन था? वे या मैं? या दोनों। या कोई नहीं। शायद···।

मेरी तबियत किसी बात में न लगती। बेकार बातें सोचा करती। मैं करती कुछ लेकिन ध्यान दूसरी तरफ रहता। सिर में अकसर दर्द रहता। मेरी चंचलता बिलकुल लुप्त हो गई थी। अब मैं गम्भीर रहती—अधिकतर मौन। कम बोलती। मेरी तबियत ठीक नहीं रहा करती। कुमार के बारे में सोचा करती। मैं दिन पर दिन दुबली होती जा रही थी। खाना कम खाती—वह भी बिना मन के।

पापा पूछते—'तुम्हारी तबियत कैसी है छाया ?'
मैं कहती—'मैं बिलकुल अच्छी हूँ ।'
मेरी सहेलियाँ पूछतीं—'तुम्हें हो क्या गया है छाया ?'
मैं जवाब देती—'मुझे हुआ क्या है। अच्छी तो हूँ ।'
वे खोद-खोदकर पूँछतीं । मै डाँट देती । वे चुप हो जातीं ।

मेरी हालत धीरे धीरे चिन्ताजनक होने लगी । मीठा सा टैंपरेचर रहता—नाइंटी नाइन । पापा ने मुझे सिविल सर्जन को दिखलाया । पता नहीं, उसने क्या कहा । पापा मेरा इलाज कराने लखनऊ ले गए। चिकित्सा होने लगी । डाक्टर लोग निश्चित रूप से यह न बता सके कि मेरी बीमारी क्या थी ! ज्यों ज्यों दवा देते गए, मर्ज बढ़ता गया ।

× × ×

मैने सोचा—कुमार ने जरूर सुना होगा कि मै यहीं हूँ । बीमार हूँ। लेकिन इतने दिन हो गए वे मुझे देखने के लिए आए नहीं उनके पिता सब-जज साहब तो आए थे । मैने सुना, वे इँगलैंड जा रहे है—डाक्टरेट के लिए । मुझसे मतलब । वे मेरे कौन ? ···आजकल मुझे ममी की याद आती । उनका चित्र मेरे सामने खिच जाता । मैं अजीब तरह के सपने देखती । मुझे उन्माद सा हो गया था । मैं अकसर प्रलाप किया करती । कभी ऐसा मालूम होता, मेरे जीवन का अन्तिम समय करीब आ गया है । डाक्टरो ने जवाब दे दिया है । पापा बेचारे सिर पर हाथ रखे रो रहे है । मैं इस संसार से चलने की तैयारी कर रही हूँ । मैं कहती—पापा, आप रो क्यो रहे है ?···मेरे लिए मत रोइए, मत रोइए । मैं तो ममी के यहाँ जा रही हूँ । मुझे जाने दीजिए । वे मुझे बहुत चाहती थीं । अपने यहाँ बुला रही हैं । न हो, आप भी चलिए । हम लोग

साथ ही चलेंगे। · नर्स, तुम मेरी तरफ इस तरह मत देखो। मैं तुम्हारी दया और सहानुभूति नहीं चाहती। मुझे डर नहीं लगेगा। मैं अकेली चली जाऊँगी ।

मेरी आँखें खुलतीं, तो मुझे कमरे के चारों तरफ कुमार ही कुमार दिखलाई देते। उनके मुँख पर व्यंग की हँसी रहती। फिर एकदम अट्टहास होता। कमरा गूँज जाता। मैं नर्स से पूछती—देखो, कैसी आवाज आ रही है? · तुम्हें सुनाई नहीं दे रहा है। कैसे सुनाई देगा। अरे, मैं तो बिलकुल भूल गई। तुम सब बहरी हो न । पापा बेकार मुझे इतने डाक्टरों को दिखलाते हैं। ये सब डाक्टर, बुड्ढे, खुर्राट हैं, सिर्फ फीस लेना जानते हैं। पापा तो व्यर्थ रुपया खर्च कर रहे हैं। मैं जिस दिन चाहूँगी एकदम अच्छी हो जाऊँगी ·· ··। पापा से सब धीरे धीरे बातें करते हैं। मैं सब समझती हूँ। वे पापा से कहते हैं, इसे 'थाइसिस' · पहाड़ पर ले जाइए। समुद्र के किनारे ले जाइए। · मुझसे छिपाना चाहते हैं। लेकिन मैं जानती हूँ कि मुझे थाइसिस वाइसिस नहीं है··। चश्मेवाला डाक्टर अँगरेजी में फुसफुस बातें करता है। कहता है, मुझे मानसिक 'एक्साइटमेंट' हो गया है। डेलिरियम का केस है। शायद दिमाग खराब हो जाय। मैं मन में उसकी बेवकूफी पर हँसती हूँ। मेरा इलाज करने चला है। कहता है, मेरा दिमाग खराब हो जायगा। दिमाग खराब हो उसके बाप-दादों का। पहले अपना तो इलाज कर ले। ··इतने दिनों से मैं यूनीवर्सिटी नहीं गई। मेरी सहेलियों से भेंट नहीं हुई ·· ·। वे मुझे जरूर याद करती होंगी। खास कर बैडमिंटन खेलने के समय कि छाया होती तो अच्छा होता। मेरी पार्टनर होती···मैंने इतने दिनों से वीणा नहीं बजाई। अपनी वीणा तो मैं छोड़ आई हूँ। पापा से कहूँगी, मेरी वीणा मँगवा दें। एक बार बजा लूँ।··लेकिन क्या

मेरी उँगलियाँ वीणा के तारो पर चल सकेंगी। प्रयत्न करूँगी ··· मेरे क्लास फेलो भी मुझे याद करते होंगे। प्रोफेसर साहब रोज क्लास में हाजिरी लेते होंगे, और मै रोज गायब। खूब ऐबसेंट लगता होगा ··सब में सरला ही मुझे बहुत चाहती थी। वह मुझे शर्तिया याद करती होगी। तभी न, कभी कभी हिचकी आती है। उसने मेरे पास एक पत्र भी तो न लिखा। लिखती कैसे ? उसे मेरा लखनऊ का पता भी तो नहीं मालूम · लड़के बेचारे रोज मेरी कार की प्रतीक्षा करते होगे, लेकिन उन्हें रोज निराश होना पड़ता होगा वह मोटर-साइकिलवाला तो मेरे लिए तबाह था। इसीलिए लड़के उसे बहुत बनाते। मेरे सामने उसके ऊपर जुमले कसते ·उसकी 'मैरेज' तो हो गई है। उसकी वाइफ मुझसे कहीं खूबसूरत है लेकिन न मालूम क्यो मै उसे बहुत अच्छी लगी। तभी तो· ·मै एग्जामिनेशन देने लायक नहीं हूँ। कितनी कमजोर हो गई हूँ। छमाही मे नबर तो अच्छे मिले थे। पापा से कल जरूर कह दूँगी कि डाक्टर की सर्टिफिकेट भेज दीजिए। शायद प्रोमोशन मिल जाय · मेरी नर्स बड़ी अच्छी है। बेचारी मेरे लिए कहती थी कि पापा ने मेरी शादी, कोई सब-जज साहब के साहब-जादे है, उन्हीं से ठीक की थी। बीमारी की वजह से न हो सकी। कहने लगी, आप जल्दी से अच्छी हो जायँ तो आपकी शादी होगी। मुझे भी अपनी शादी मे बुलाइएगा। मैं जरूर आऊँगी। कितनी पगली है, वह भोली· · पापा मेरी शादी ठीक करते· · वह भी साहबजादे से· · ·और मुझे पता न चलता· · ·मै तो शादी करूँगी ही नही। शादी करके क्या होगा। बेकार है और अब मुझे ज्यादा दिन रहना भी तो नहीं है। कुछ दिनों की और मेहमान हूँ ··क्या सचमुच मेरा अन्त हो जायगा ? इतनी जल्दी नहीं नहीं · तब तो मेरा नाम भी क्लास के रजिस्टर से कट जायगा ··

'लीडर' मे निकलेगा—राय साहब की एकमात्र लडकी कुमारी छाया देवी का, जो स्थानीय विद्यालय मे पढ़ती थी, देहान्त हो गया।""सब लोगो को मालूम हो जायगा। कडोलेंस मीटिंग होकर विद्यालय भी शायद आधे दिन के लिए बंद हो जाय और लोग छाया को भूल जाएँगे" मेरे लिए कम से कम सरला तो अवश्य रोएगी। लेकिन नहीं नहो "ऐसा नही हो सकता" मै जीऊँगी" "अभी मेरी उम्र ही क्या है।""मैंने सरला से वादा किया था कि मैं उसे वीणा वजाना सिखला दूँगी।""उसकी कुछ किताबें मेरे पास है। उन्हें लौटाना है। दूसरे साल वह ड्रामा के सेक्रेटरीशिप के लिए खडी होगी। मुझे उसे वोट देना होगा। वह कहती थी—"छाया मै तुम्हें ही 'मेन रोल' दूँगी। तुम तो गजव का अभिनय करोगी। सबकी सब यही कहती थी।" " उन सबो को क्या मालूम कि मै जीवन में सच्चा अभिनय कर रही हूँ.....।

'नर्स-नर्स'

क्या है ?" "कौन है ?

कोई मिलना चाहता है।

मुझसे ?

कह दो—मै नहीं मिलूँगी। मेरा इस विश्व में है ही कौन !

क्या ?" "क्या कहा ?""वे मुझे जानते हैं।

जानते होगे। जानने के लिए तो मुझे कितने जानते है पर मैं तो उन्हें नहीं जानती""।

वड़े भलेमानस है।

होंगे, अपने घर के लिए। मैं नहीं किसी से मिलूँगी।

पापा। डाक्टर। आ रहे है। आने दो। ये लोग मेरी जान नहीं छोड़नेवाले। डाक्टर साहब मुझे देख सकते है, पर मै उनकी दवा

नहो पीऊँगी''''गरमी मे बिजली का फैन मना कर दिया, यह कहाँ की अक्लमंदी है। मुझे बड़ा अनकुस मालूम होता है''' सबने सूई कोच-कोंचकर, मारे इंजेक्शन के मेरी हालत खराब कर दी'''। है''''और वह कौन है?''''उन लोगो के साथ !'''इसका चेहरा तो कुछ परिचित मालूम पड़ता है''''इसे मैने कहीं देखा है''''याद नहीं आ रहा है''''कहाँ?'''है'''य—यह तो मेरा नाम ले रहा है''''क्या''''क्या कह रहा है?

तुम कैसी हो? तुम्हारी तबियत कैसी है? ··

···मेरी तबियत, कैसी भी हो—उससे मतलब?···मेरे सिरहाने बैठ गया—मेरे माथे को सहलाने लगा · और मै कुछ न बोली । · कह रहा है— 'छाया, छाया, तुम मुझे नहीं पहचानती? '

डाक्टर साहब इस तरह मेरी तरफ देख क्यों रहे है! मैं सब बाते समझकर भी नहीं समझ रही हूँ। मुझे हो क्या गया है? मेरी आँखो से न जाने क्यो टपटप आँसू टपक रहे है मेरे आँसू पोछने के लिए शायद वह अपने जेब से रूमाल निकाल रहा है ।

हाँ, सचमुच, वह मेरे आँसू पोछने लगा। रूमाल के किनारे · लाल अक्षरो में क्या लिखा है ··'

आई—जे—के · 'के'·· क्या कुमार·· ?···

'हाँ, छाया, तुम रो रही हो'

'तुम आ गए'

'मै आ गया छाया'

'मै जानती थी, तुम जरूर आओगे'

'मै भी जानता था, तुम मुझे न भूल पाओगी'

'छाया'

'कुमार'
'मुझे....'
'जाने दो। बीती....'

× × ×

वह एक सच्चा स्वप्न था। जब मेरी आँखें खुलीं, तो मैंने देखा—पापा और डाक्टर खड़े है। नर्स पखा झल रही है और कुमार मुझसे कह रहे हैं—

'तुम सो रही थीं। हमलोग कितनी देर से तुम्हारा इंतजार कर रहे है। मैं कब से तुम्हें पुकार रहा हूँ। क्या तुम कोई स्वप्न देख रही थीं ..! उस समय मेरी आँखो में मुसकराहट थी।

उसके बाद—कुमार रोज आते। धीरे धीरे मै अच्छी होने लगी। चंगी हो जाने पर मैं हवा बदलने के लिए कुमार के साथ स्विटजरलैंड जा रही थी। फिर वहाँ से हम लोग विलायत जाएँगे कुमार वहीं पर डाक्टरेट के लिए रिसर्च करेंगे और मै उनके शोध मे सहयोग दूँगी। अब भी मुझे अक्सर युनीवर्सिटी की बातें, लड़के लडकियो का रोमास और अपनी सखियाँ याद आ जाती है। लेकिन अब मै वह पहले जैसी विद्यालय की चहकती हुई कुमारी छाया नहीं हूँ, अब तो मुझे लोग कहते है मिसेज ।

❀ ❀ ❀

— कुत्ते का नाखून —

❀ ❀ ❀

पढ़ने का समय : १० मिनट

पठित : गल्प-सम्मेलन, प्रयाग-विश्वविद्यालय, १९३९

रचनाकाल : १९३९

प्रकाशित : 'नई कहानियाँ'

(१)

बॅगले के दो हिस्से है। आधे मे डाक्टर साहब रहते हैं, आधे में डिप्टी साहब। डिप्टी साहब के परिवार मे एक झबरा कुत्ता है। उनकी नए ख्याल की ग्रेजुएट श्रीमती है। दो बच्चे है--एक हाल ही का सात महीने का बेबी और एक तीन साल का हरीश। हरीश को अभी से ॲगरेजी बोलने की तालीम दी जा रही है। डिप्टी साहब को कहता है 'डैडी' और अपनी मॉ को 'मॉ' नहीं—ममी। डिप्टी साहब की श्रीमती का नाम तो वैसे है रेखा, पर अर्दली लोग आपस मे उन्हें मेम साहब ही कहते है, सोनरिया दूधवाली तो कहती है—कभी मलकिन, कभी बहूजी। 'चॉद' के ग्राहकों मे उनका नाम दर्ज है मिसेज""और डिप्टी साहब जब कभी 'मूड' मे आते, उस दिन अपनी श्रीमती को 'रेखा डियर' कहकर पुकारते।

श्रीमती रेखा की एक छोटी बहन भी है--बिंदी। यह बिंदी

अभी 'अंडर टीन' है—कुमारी है। डाक्टर साहब सिर्फ दो प्राणी है। खुद और पत्नी नीरा। शादी को तीन साल हुए, पर अभी तक कोई औलाद नही है। वे मानते है कि कम उम्र मे बच्चा पैदा होना शिशु-मृत्यु का एक जबर्दस्त कारण है। उनका अपना मत है कि पत्नियों को बीसवे साल के बाद बच्चा जनना चाहिए हिंदुस्तान की गरीबी और बढ़ती हुई आबादी को देखते हुए वह 'बर्थ कंट्रोल' मे विश्वास करते है।

(२)

दो साल पहले जब कि डिप्टी साहब की बदली यहाँ हुई, तभी से डाक्टर और डिप्टी मे पटरी खाने लगी। आपस में बिलकुल घराना बरताव है। श्रीमती रेखा डाक्टर के सामने होती हैं—बड़े मजे मे। डाक्टर की पत्नी नीरा डिप्टी साहब के सामने; पर जरा कुछ शर्माते हुए। और मिस बिंदी तो डाक्टर से बड़ी ही बेतकल्लुफी से पेश आती है। नीरा की सखी रेखा की भी सखी और सहपाठिनी रह चुकी है। इन्हीं की लंबी चौडी चिट्ठियों के जरिए नीरा को श्रीमती रेखा का कच्चा चिट्ठा मालूम हुआ। यह कहा जाता था कि फैशन मे रेखा ने कितनो के कान काटे और कालेज मे अपने जमाने की सबसे 'फारवर्ड' लड़कियों मेसे थी। सबसे पहले पहल बिना बाहों का जपर पहनने, उलटे पल्ले पर साड़ी लेने का रिवाज इसी ने जारी किया। आए दिन नए नए 'डिजाइन' की चूड़ियों को अपनी नाजुक कलाइयों मे खनकाने और नए नए स्वॉग रचने का इसका रेकार्ड था। खासकर फैंसी ड्रेसो मे तो हर साल वह एक न एक पुरस्कार झाड़ती।

संगीत-सम्मेलन के 'त त त त थेई थेई छम छनन ··· झम झनन ···' प्रतियोगिताओ मे हमेशा शरीक रहती और स्वदेशी

प्रदर्शनी के दिनों में तो वह स्वयं एक चलती फिरती नुमाइश करार कर दी जाती।

रेखा की शादी के मौके पर उसकी सहेलियों ने उसे कोरी बधाइयाँ ही नहीं भेजी थीं, बल्कि और भी कितनी बातें लिखीं—

'तुम्हारे तो वह पी० सी० एस० है !'

'अब तो तुम्हारे मिजाज और भी न मिलेंगे ··!'

'क्या भाग्य चमका है·· !'

एक ने तो यहाँ तक लिख दिया—'सखी तुम्हारे ऐसे दिन न जाने मुझे कब नसीब होंगे·· ?'

इन खतों को श्रीमती रेखा ने अब तक बड़े यत्न से रखा था।

(३)

बिंदी रेखा से किसी बात में कम नहीं है। जहाँ श्रीमती रेखा की बगल से कढ़ी माँग पर सिन्दूर की पतली रेखा है, वहाँ मिस बिंदी के माथे पर गोल बिंदी है। जहाँ श्रीमती रेखा सिर्फ दूर से ही देखने में अच्छी लगती हैं, वहाँ मिस बिंदी हर तरफ से अच्छी लगती है। उसमें जवानी अभी एकदम तो नहीं आई है पर हाँ फूट फूटकर आ रही है। उसकी लंबी काली बरौनियों से सुरक्षित गहरी काली पुतलियों में ४५ डिग्री का ऐंगिल बनाकर भाव से बराबर चलते रहने की चाट है, चाल में नफासत है, उसकी हर एक बात में एक पुट है, तर्ज है, 'स्टाइल' है। वह अल्हड़ लड़की बेहद सुंदर है और अपनी खूबसूरती से लोगों को कायल कर देती है। फिलहाल उसमें किसी की 'मिसेज' बनने की ख्वाहिश नहीं है पर उसके इस एकाकी जीवन में 'रोमांस' का तकाजा बड़ा जबर्दस्त है।

शाम का वक्त है। डिप्टी साहब क्लब गए हुए हैं। श्रीमती

रेखा ई० ओ०—इक्जीक्यूटिव आफिसर—मिस्टर खन्ना से मिलने गई है और मिस बिंदी चोटी से लेकर एड़ी तक एकदम फार्म में टिपटाप कहीं जाने को तैयार हैं। डाक्टर साहब अपनी पोर्टिको मे बैठे 'नैशनल हेराल्ड' अखबार देख रहे है।

बिंदी उनसे कहती है—'डाक्टर साहब चल रहे है—पिक्चर्स''' ?

'कौन सी फिल्म है ?'

'फिल्म तो बॅगला है।'

'गोल गोल ॲगला बॅगला क्या खाक समझ मे आएगी।'

'बहरहाल जरा देखिएगा लोग बॅगला मे कैसे 'लव' करते है।'

—मुसकराते मुसकराते बिंदी ने कह डाला।

डाक्टर को भी साथ देने के लिए मुसकराना पड़ा। बोले—

'सिनेमा देखने की मेरी तबियत तो नहीं है, वैसे जैसा तुम कहो ?'

'कह तो रही हूँ। अब कैसे कहूँ ? चलिए न ?'

'तो फिर चलो ! न हो हरीश को भी साथ ले लो ?'

'न ! मै बच्चों को लेकर सिनेमा नहीं जाती। कहीं वह हाल के अंदर रोना धोना शुरू कर देगा तो कौन बला अपने सर उठाएगा।'

डाक्टर ने ड्राइवर को आवाज दी। बिंदी बोली—

'शोफर के चलने की क्या जरूरत है ? मैं खुद ड्राइव कर लूँगी।' डाक्टर को कत्तई एतराज न था।

(४)

'आप बिंदी के साथ ऐसे मत जाया कीजिए।'

'क्यो ?'

'यो ही !'

'वाह ! अच्छी रही यों ही। तुमने कह दिया और मैंने मान लिया !'

'मुझे आपके ऊपर विश्वास है ! पर ...'

'यह सब क्या पचड़ा .. ?'

'उन लोगों की बात जाने दीजिए। उनके घर का ढर्रा मुझे बिलकुल नापसंद है। श्रीमती रेखा की बात छोड़िए। वे तो खन्ना साहब के साथ ही काफी बदनाम हो गई है।'

'मुझसे उनसे क्या मतलब ?'

'कल को लोग कहीं आपके और बिंदी के बारे मे भी कुछ कहने लग गए तो मेरी तो नाक कट जायगी।'

'खैर, इसकी चिता मत करो। आखिर मैं किस दिन के लिए हूँ। तुम्हारी नाक ठीक कर दूँगा।'

'बस आपको तो हर वक्त मजाक सूझता है।'

'लोग झूठ ही खामखा मुझे बदनाम कर देंगे।'

'बदनाम करनेवाले सचाई झुठाई नहीं देखते। उन्हें तो मसाला मिलना चाहिए।'

'पर जब बिंदी ने मुझसे सिनेमा चलने के लिए कहा तो मैं कैसे इंकार कर सकता ?'

'बिंदी आपकी कौन लगती है ?'

'मामूली सी बात को तूल देना, बढ़-बढ़कर बातें करना तुम लोगों को खूब आता है। खफा मत हो। डिप्टी साहब के साथ तुम भी किसी दिन सिनेमा चली जाना। मै कुछ न बोलूँगा।'

'देखिए मुझसे ऐसा मजाक मत किया कीजिए।'

डाक्टर साहब यह जानते थे कि नीरा बड़ी भावुक स्त्री है और कुछ कह सुन देने पर उसके ऑखों मे ऑसू की बूँदो के आ जाने की सम्भावना थी। इसलिए वह चुप हो गए।

नीरा ने भी बात को आगे बढ़ाना ठीक न समझा।

डाक्टर ने उठकर स्विच से बिजली बुझा दी।

(५)

क्लब की लान पर बेंत की कुर्सियाँ पड़ी थीं। डिप्टी साहब और डाक्टर साहब बैठे बातें कर रहे थे। श्रीमती का तजकिरा छिड़ा था। कहना न होगा कि शादी के बाद रेखा ने धीरे धीरे अपना रोब डिप्टी साहब के ऊपर गालिब कर दिया। यहाँ तक कि रेखा के बीच मे दखल देने या चूँ तक करने की मजाल डिप्टी साहब में न थी। रेखा के आगे डिप्टी साहब की एक न चलती।

'डाक्टर! मै तो रेखा से परेशान आ गया हूँ।'

'अभी तो श्रीगणेश है। देखा कीजिए कि अभी वे क्या क्या नाच नचाती हैं।'

'न जाने कहाँ से यह मेरे पल्ले पड़ी।'

'बवाल तो आपने अपने सर खुद ही मढ़ा। माफ कीजिएगा। रोग को तो आप ही ने पाला।'

'यह कैसे?'

'अगर आप इतना ही समझ पाते!'

'मैंने क्या गलती की?'

'पूछते हैं, गलती? सरासर आपने गलती की। इंटरमीडिएट पास तक शादी करते तो खैर गनीमत थी। माफ कीजिएगा, परचा- कर आपने उनकी आदत बिगाड़ दी।'

'हाँ··यह तो जरूर डाक्टर···तुम ठीक कहते हो···मुझे कड़ाई··· ।'

'अब कड़ाई-चड़ाई से क्या! शुरू शुरू में आपने उन्हें सर चढ़ा दिया। वे ढीठ हो गई। तभी न आज नाकों चने चबवा रही हैं।'

'डाक्टर मैंने तो हमेशा प्यार किया और सिधाई से पेश आया ··।'

'यही तो गलती थी डिप्टी साहब। प्यार करने का भी एक ढंग होता है। माफ कीजिएगा; चाहे डिप्टी कलेक्टरी आप भले ही कर लेते हों, पर प्रेम करने में आप बिलकुल अनाड़ी रहे। मैं डाक्टर हूँ। आज से आप मेरी बात गठिया लें। प्रेम के मामले में बड़ी बारीकी और परहेजी से काम लिया जाता है। ··· दोस्त होने के नाते मैं आपसे एक बात और कह् देना ठीक समझता हूँ—आपकी श्रीमती का ई० ओ० खन्ना के साथ इस तरह घूमना, लोगों की नजरों में खटक रहा है।'

डिप्टी साहब शायद कुछ सफाई देते। पर क्लब के चंद सदस्य उसी तरफ ब्रिज खेलने के लिए आ रहे थे। वे चुप हो गए।

(६)

'कहाँ जा रहे हैं?'

'जलसे में।'

'कैसा जलसा?'

'क्लब की तरफ से पार्टी है।'

'मुझे क्यों नहीं बतलाया?'

'बतलाने की कोई जरूरत न थी। आज के जलसे में महिलाएँ न आएँगी।'

'क्यो नहीं आएँगी ··· मैं तो चलूँगी।'

'चलोगी? दस के बीच में अपनी खिल्ली उड़वाने के लिए?'

'कौन है ऐसा, जो हँसी उड़ाएगा।'

'चुप रहो, तीन रोज से बेबी को बुखार आ रहा है, उसकी तबियत खराब है। तुम्हें उसके पास रहना चाहिए।'

श्रीमती रेखा का पारा चढ़ रहा था।

'बेबी की तबियत खराब है।' दोहराते हुए उसने कहा—'मेरे जाने के लिए तो बेबी की तबियत खराब है और अपनी दफा बेबी की तबियत खराब नहीं, खुद क्यो नहीं बेबी के पास बैठते ?'

'बेबी के बारे में दस्तकिरी मत करो। क्यों मेरा सिर खा रही हो ? मैं बेकार की बहस नहीं करना चाहता।'

डिप्टी साहब आज बड़े ताव में थे।

'मुझे तो जाना ही पड़ेगा। चंदा दे रक्खा है और आने का वादा किया है।'

वे कपड़ा पहन चुके थे। कार पर बैठे, चल दिए।

श्रीमती रेखा की आँखों से अंगारे निकल रहे थे।

भला वे यह कब गवारा कर सकतीं ? उन्होंने फौरन तॉगा मॅगवाया। नौकरो ने आपस में कानाफूसी की।

(७)

'नीरा !'

'कौन ?···बिंदो !'

'हाँ।'

'आओ।'

'डाक्टर साहब लौटे···।'

'नहीं। अभी तो नहीं। जानती ही हो देहरादून बदली हो गई। उसी चक्कर में गए हुए हैं। बेबी की तबियत कैसी है ?'

'अच्छी नहीं है, घर में न तो जीजी हैं न जीजा। आपस में गर्मागर्म बहस हुई। जीजा पार्टी मे चले गए। जीजी शायद खन्ना साहब के यहाँ गई। बेबी को हॉफी आ रही है···।'

'चलो मैं चलती हूँ। घबड़ाओ मत।'

नीरा ने देखा—बुखार से बेबी का सारा बदन तप रहा है। जोरों से साँस चल रही है। हालत खराब है। सात महीने का अबोध बच्चा! न जाने उसे कौन-सी तकलीफ थी, कौन-सी वेदना थी। वह बोल नहीं सकता था। कुछ कह नहीं सकता था। पड़ा पड़ा मारे बेचैनी के छटपटा रहा था...।

नीरा ने सोचा—काश! मेरे शिशु होते.. मैं तो कभी उसे ऐसे न छोडती!

काफी रात हो चली थी। न तो डिप्टी साहब ही लौटे थे और न रेखा ही।

'बहिन बोलो। क्या करूँ? सुबह सिनहा डाक्टर देख गए थे। कोई खास बात न थी। तीन खोराक दवा भी पिलाई जा चुकी है।'—बिदी बोली।

नीरा ने जवाब दिया—'घबड़ाने से तो काम न चलेगा। अभी सिविल सर्जन को बुलाने को स्लिप लिखे देती हूँ। अर्दली को बुलाओ।'

महीन आवाज मे बिदी ने पुकारा—'शुबराती!' शुबराती'...!!'

शुबराती आया। नीरा ने कहा—'सिविल सर्जन साहब का बँगला दूर तो है, पर साइकिल पर फौरन चले जाओ। यह खत देना। मिस साहब का सलाम बोलना और देखो—उन्हें साथ ले आना। जबानी भी कह देना कि बेबी की तबियत बहुत खराब है।'

(८)

दुनिया खामोश थी। रात जोरो से आगे बढ़ रही थी। उसका कालापन और घना होता जा रहा था। क्लब में मह फिल लगी हुई थी। डिप्टी साहब जमे हुए थे। उनका शोफर

फ़ार पर बैठा ऊँघ रहा था। बिंदी का दिल बेबी के लिए धड़क रहा था। नीरा शांत थी और चिंतित। श्रीमती रेखा खन्ना साहब के यहाँ से ताँगे पर लौट रही थीं। हवा जोर बाँध रही थी। शुबराती की साइकिल का लप बुझ रहा था। ताँगे वाले की बत्ती धीमी हो रही थी। सड़क पर कुत्ते भूँक रहे थे। श्रीमती रेखा अपने कुत्ते के बढ़े हुए नाखूनों को याद कर रही थीं। बेबी जिंदगी की आखिरी हिचकियाँ लेकर दम तोड़ रहा था। उसके छोटे छोटे नाखून नीले पड़ रहे थे।

—गेसटापो—

❁

पढ़ने का समय : ८ मिनट

रचनाकाल : १९४४

प्रकाशित : 'संसार', होली-विशेषांक

मुश्किल से वे बारह चौदह रहे होंगे, और कहने के लिए वह एक जलूस था। यही आजकल के क० रै० दल का आगे आगे हँसुए के चिह्न का प्रतीक लाल झंडा था और एक-एक कतार में दो-दो

की जोड़ियाँ। चलने का यही तरीका था जिससे कम संख्या में भी कुछ लंबाई तो आ जाय। कोट-पतलून उसके नीचे चप्पल या खद्दर के चूड़ीदार पाजामे के ऊपर कफदार लंबा ढीला कुरता और ऊपर से पेशावरी सैंडिल या ढीली मोहरी के पैजामे के ऊपर कुछ रूसी नकल की कमीज—इन्हीं मेलों की उनकी बेमेल पोशाक थी। सूखे बाल, कुछ मर्दानी, उड़ती हुई शकल, ऊँची आवाज, बुलंद नारे। वे चले जा रहे थे—अपने मुँह मियाँ मिट्ठू।

पर दूसरी कतार में एक विशेपता थी। पूरी कलकतिया छाप की एक सुंदर युवती। चलती हुई शकल, देखने में पढ़ी लिखी, चेहरे से टपकती अमीरी और धानी रंग की साड़ी भी कीमती…।

इस विशेषता के अभाव में शायद लोगों की नजर उस जलूस पर न पड़ती।

'यह महिला कैसे इस गिरोह में बहक गई?'—मेरे मित्र हजरत ने पूछा।

आज के क० रै० दल से वह थोड़ी नफरत करता था। पर दल की लपेट मे आनेवाले लोगों के प्रति वह अनुदार न था। उसे उलझन हो रही थी कि यह लड़की कैसे इस दल की किस्म के विचार रख सकती है। इस प्रकार पिट्ठू … वह विश्वास नहीं करना चाहता था। जरूर दल के प्रचारवादियों ने उसे वर्गलाया है। वह अपनी धुन में बके जा रहा था…।

'हाँ तुम इसे जानते हो?'

हजरत का प्रश्न था। मैंने देखा मित्र की जिज्ञासा कुछ बढ़ रही है; धीरे धीरे कुछ मोह भी…

'आखिर यह है कौन?'

उसने दोहराया। जो कुछ जानता था मैंने कह डाला।

'सबसे बड़ी बात यह है कि आप 'प्रगतिशील' है। अभी हाल

मैं कलकत्ते से आई हैं। बी० ए० है। एक ऊँचे सरकारी पदाधिकारी की गलती हैं। यहाँ मिस मू० स० दानी के नाम से शोहरत पाई है। जब से आप पार्टी की सदस्या हुई हैं, क० रै० दल की संख्या तिगुनी हो गई है और सदस्यों के अंदर जान आ गई है। सुनते हैं वे बहुत फारवर्ड हैं और प्रचार मंत्री के शब्दो में—बौद्धिक। पर आपके संबंध में लोगों में बड़ी अफवाहें हैं। कहते हैं कि आप को मूसो से बहुत चिढ़ है। उनका उछलना-कूदना, आजादी में हवा खाना आपको खलता है। इसीलिए आप कलकत्ते से मूसदानी लेकर आई हैं और जहाँ कहीं ये सत्य के पुजारी अहिंसक मूस चरते फिरते नजर आते है आप चारा फेंककर अपनी मूसदानी में बंद करके शहर से दूर हवालात के मैदान मे उन्हें छुड़वा देती हैं। मजा यह है कि क० रै० दल को इस कार्य के लिए आपने चुना है···।'

हजरत के चेहरे पर शिकन आई और आप उबल पड़े।

'फिर तो मेरा इनसे मिलना जरूरी हो गया। इनको समझाना भी आवश्यक है।'

'मुझे भी ऐसा ही लग रहा है'—मैंने कहा।

'आखिर आज तक का मेरा ज्ञान और पेशा किस दिन काम आएगा···क० रै० दल के खोखलेपन को मैं उड़ेल दूँगा—खामखा के लिए इन लोगों ने लीडरी का चोगा पहन रक्खा है। बेवजह का जलूस निकालते हैं, सभा करते है, चिल्लपों मचाते हैं। सुनता कौन है इनकी? सड़कों पर अखबार लेकर बेचने से जनता के नहीं हो सकते। जनता पढ़ना ही नहीं जानती, अखबार क्या बाँचेगी! पहले ये जनता को साक्षर बनाएँ फिर अखबार बाँटें तो अच्छा हो···रूस को इनसे क्या सहानुभूति है?

'भारत के लिए सोवियट ने क्या किया?··· मार्क्स को इन्होंने

खाक पड़ा है ··· ट्राटस्की मर गया ··· कामिनटर्न टूट गया ··· इनको अफसोस नहीं ··· ये कामरेड है। अजी सुनो घर में बूर्जवा बन कर बैठने और बाहर क० रै० दल का ढोल पीटने में बहुत अंतर है। ये पहले अपनी जिंदगी की इस बेमेल बात को मिटा दें फिर इनकी बातों में कोई तत्त्व होगा··· और आजकल राजनीति-वाजनीति सब बला है, ढोंग है, जिच है · · ये राष्ट्र पल्ले दर्जे के खुदगर्ज ··· शोषक ··· हिंसक ··· भ्रष्ट है—इनमें मानवता कहाँ? मेरी पूछो तो इनके वर्तमान रूप का ध्वंस ही चाहूँ ··· फिर ये मिस मू० स० दानी इस दलदल में क्यों फँसीं?'

हजरत की आदत है कि जब बोलने लगते है फिर साँस नहीं लेते। ऊटपटाँग उलटा-सीधा जो कुछ मुँह में आया कह जाते है। विचार कुछ अजीब मौलिक हैं और सीटने में बातें मजेदार करेंगे—खरी। अपने ढंग से समस्याओं का विश्लेषण करने की इनकी शक्ति और सूझ बुरी नहीं, पर निर्णय तौले हुए, संयत तो कहें या न कहें पर घोर तो है ही। आवेग में वे अपनी प्रति-क्रियाओं को बड़ी सचाई और ईमानदारी से बेहिचक व्यक्त कर देंगे ··· इस समय तो हजरत की रुचि जाकर मिस दानी पर अटक गई। आपने वहीं निश्चय किया कि मैं मिस दानी से अवश्य मिलूँगा और उसे इस दल से हाथ धोने की नेक सलाह दूँगा।

मैंने हजरत को चेतावनी दी कि वह खतरनाक है। उसके पास मूसदानी है। उसमें बंद हो जाने की संभावना कुछ अन-होनी नहीं है। पर बात टाल दी और बोले—

'तेल देखो और तेल की धार देखो। मैं कल ही मिस दानी से मिलूँगा और बाकायदे इंटरव्यू करूँगा। नमस्ते।'

हजरत नौ दो ग्यारह हो गए।

जलूस भी आँखों से ओझल हो चुका था। उसकी आवाज़ भी कोलाहल में खो चुकी थी।

× × ×

'आप ही मिस मू० दानी बी० ए० हैं?'

'जी हाँ।'

'बड़ी प्रसन्नता हुई। एक विशेष कार्य से आपके यहाँ आया हूँ। क्षमा कीजिएगा।'

'कहिए।'

'मेरा परिचय सुनकर आप मुझे उपेक्षा की दृष्टि से तो नहीं देखेंगी।'

'आप क्या कह रहे हैं?'

'यही तो आप क्षमा करेंगी। आप इतना माने कि सी० आई० डी० होना कोई जुर्म नहीं है और मैं सी० आई० डी० हूँ।'

'ओह।'

'आप क० रै० दल की सदस्या हैं?'

'........'

'मुझे सब मालूम है। आप अस्वीकार कैसे कर सकती हैं।'

'........'

'आप जलूस में जाती हैं, पार्टी की बैठकों में शरीक होती हैं, प्रचार करती हैं और ·· हाँ जाने दीजिए ···'

'........'

'इसी से आपके ऊपर निगाह रखने का मुझे आदेश हुआ है। पर मैं आपका शुभचिंतक हूँ। इसी से मैं आपके यहाँ आया भी। क्यों आप नाहक इस क० रै० दल में सम्मिलित हुई हैं। आप एक अच्छे खानदान की शोभा हैं। इसी से मैं चाहूँ कि आप इन सब मामलों से अलग हो जायँ ···।'

'..........'

'बस इतना ही मुझे कहना है। सोच लीजिए आप। अभी अवसर है—'

वह खामोश रही और मैंने भी उसे और नहीं छेड़ा, फिर मिलने के लिए कहा और चलता बना—कहो कैसी रही।

बड़ी रोचकता से हजरत ने मिस दानी से मिलने का वृत्तांत मुझे सुनाया। मैंने कहा—

'हजरत तुम गए। बच नहीं सकते। वह ले बीती तुम्हें। गेसटापो के साथ 'फिफ्थ कालम' का काम करते हो। लद जाओगे।'

हजरत ने फौरन उत्तर दिया—

'तुम लोग बेकार उसके खिलाफ प्रोपोगैंडा करते हो। वह गेसटापो-वापो नहीं है। बड़ी सीधी और अच्छी लड़की है। कुछ जिंदगी का जोश है, उभरन है, अपने को व्यक्त कर रही है। क्यों झूठमूठ उसे बदनाम करते हो। देखो तो, उसके अदर क्या नहीं हैं। ग्रीक सुंदरता उसके आगे मात है। उमर खैयाम की कल्पना की प्रेयसी से मिलती-जुलती आँखों की उसमें झलक है। उसमे ग्रीटा गार्बो के अभिव्यजन का रहस्यवाद छिपा है। नारी सुलभ संकोच का थोड़ा अभाव उसमें भले ही हो, फिर भी उसको आधुनिकपन में जीवन का सक्रिय रूप मिला है...'

मैं ताड़ गया कि हजरत इस समय अपने 'रव' में हैं। पर इतना तो मानूँ ही कि मनुष्य जीवट का है और इसमें भी कुछ संदेह नहीं कुछ बॉगड़ू भी है।

× × ×

इसके पश्चात् व्यवसाय के सिलसिले में मुझे बाहर जाना पड़ा। करीब पद्रह दिन उधर ही लग गए। लौटा तो सीधे हज-

रत के यहाँ पहुँचा। पता चला कि आप अपने पुराने पेशे से बाज नहीं आए। मिस मू० दानी के यहाँ मिलने गए थे। वहीं नकली जासूस बनकर मिस दानी को धोखा देने के अभियोग में गिर-फ्तार कर लिए गए हैं। सातवें दिन मुकदमे को पेशी है। मैं भी गवाहों में तलब हूँ। बैठे बैठे मामला इतना तूल पकड़ लेगा किसने सोचा था। मुझे हजरत के ऊपर गुस्सा लग रहा था—बड़ा घनचक्कर है। खैर ··उसके घर से उसकी कुल सनदें, बर्मा और चीन सरकार से मिले हुए प्रमाणपत्रों को एकत्र कर मैं पैरवी के दिन कचहरी पहुँचा।

इजलास में अपनी सफाई देते हुए हजरत ने बयान किया—

'हुजूर, पिताजी ने मुझे पढ़ाया लिखाया, पर मैंने अपने मौरूसी पेशे को नहीं छोड़ा। सालों मैं चीन बर्मा में रहा हूँ और कला में प्रवीण हो चुका हूँ। सच पूछिए तो इसी की मैं रोटी खाता हूँ। बड़े बड़े कलेक्टर, कमिश्नर, जज, राजा, महाराज की सनदें, आप देख लीजिए। सब मेरे हुनर का लोहा मानते है। मुझे कौन नहीं जानता? सरकार को भी मुझे पहचानने में धोखा हुआ। मुझे इनाम मिलना चाहिए ··'

उसकी आवाज बदल चुकी थी। नकली मूछें हट चुकी थीं। चेहरे का तनाव हल्का पड़ चुका था। मिस दानी तो बदली शकल देखकर हक्का-बक्का हो गईं। लोगो ने पहचाना—

वह चीन से लौटा हुआ शहर का मशहूर अपटूडेट बहुरू-पिया था।

❁

— बेसबूत —

❀

पढ़ने का समय : ८ मिनट

पठित : बाराबंकी गल्प-सम्मेलन, १९४४

रचनाकाल : १९४२

प्रकाशित : 'आपबीती', नववर्षांक

मैं जवान था, शौकीन था और घुमक्कड़। कुछ तबियत भी पाई थी। गुलाबी जाड़े की रात थी और काशी मे नुमाइश। मैं भी देखने के लिए गया था। अकेला ही टहल रहा था। यकायक मेरी नजर उस पर पड़ी। वह कपड़े की दूकान में दीवार के सहारे चुपचाप खड़ी थी। कितने आते थे, कितने जाते थे। सूटवाले, बेसूटवाले। अचकन-चूड़ीदारवाले। ढीला पैजामा और उसपर अधकटा कोटवाले। बच्चे-बच्चे, बुजुर्ग-बुजुर्ग। सब तरह की महिलाएँ, सब किस्म के आदमी। कोई उसे देखता था, कोई नहीं। इत्तिफाक था कि अपनी जिंदगी मे मैंने उसे देखा। कह नहीं सकता—क्यों उसने बुरी तरह अपनी ओर मुझे खींचा। मै अपने को रोक न सका। बिलकुल पास जाकर मैने उसे बखूबी देखा। वह मुझे बहुत जॅची। कोई भी चीज पसंद आने पर तबियत यही करती है यह मेरी हो जाय। मैं

उसका भले ही होऊँ चाहे न होऊँ। वह हो फिर दुनिया की सारी चीजें मात ! वही हुआ। ऑखों से देखने से तबियत नहीं भरती। मन कुछ और करता है—यह चंचल मन ! दाहिने हाथ को मैंने बढ़ाया और उसे मैंने छू दिया। सहलाया। उलट पुलटकर टोया बार बार। वह कितनी मुलायम थी और चिकनी। मैं उस काली सर्ज पर लट्टू था।

मैंने टटोला। मेरा जेब उन दिनों गरम था। चीज बिकाऊ तो थी ही। मैंने भाव पूछा। दाम एक था। सौदा पट गया। खन-खन मुझे नगद टिकाना पड़ा। चॉदी के टुकड़ो में बड़ी ताकत होती है, इसी से लोग उसकी कद्र करते है। वह मेरे हवाले हुई। मुझे उसे अपने साथ ढोना पड़ा।

कट-छॅटकर तैयार होने में पूरे सात दिन लग गए। दुरुस्त होने पर मैंने ट्रायल किया—बिलकुल ठीक।

दर्जी ने कहा था—कहॉ से आप इसे ले आए ?

भाभी ने—तुम्हें तो खूब फिट होती है।

मित्रों ने—यार इसका कट अच्छा है। खूब सिली है। काली सर्ज की अचकन पहनकर मै निकला तो राहचलतू भी उस पर एक नजर फेंक देते थे। सभी तरफ से उस काली शेरवानी के लिए मुझे दाद मिली थी। इतनी तारीफ जितनी शायद स्टैलिन को जर्मनों को स्टैलिनग्राड से हटा देने में भी न मिली हो। इसी से मुझे उससे बहुत प्रेम था। मैं उसे बड़ी हिफाजत से तहा कर रखता, और खास खास मौकों पर ही उसे पहनने की सोची थी।

× × ×

जमाना बुरा था। चीजें बेहद मॅहगी थीं। लोगों को खाना मिलना मुहाल हो गया था। भूख सताती थी। गरीबी मारती

थी। बेकसी, बेबसी से लोग छटपटा रहे थे। कोई चारा नहीं। कहीं अकाल पड़ रहा था। कहीं महामारी थी। लोग मर रहे थे। कोई पुरसाहाल नहीं। हाँ, दुनिया अपने रव में चली जा रही थी। जिंदगी किसी तरह चल रही थी, खिसक रही थी, टल रही थी। सुबह होती थी, दुपहरी, शाम; फिर रात। फिर सुबह, फिर वही क्रम। इसी तरह जीवन के दिन बिना खुशी के, बिना रंज के बीत रहे थे···।

पर—एक दिन, सुबह।

नौकर हड़बड़ाकर जगाते हुए बोला—बाबूजी, बाहर का दरवाजा खुला है, चौखट में लगी हुई छड़ मुड़ी है, कई छड़ें गायब है, संदूक टूटा···।

चारपाई छोड़नी पडी।

चोरी? मेरे घर में चोरी!

अखबार गायब थे—कागज चिट्ठियाँ इधर उधर अस्त-व्यस्त बिखरी—

घड़ी नदारद, ट्रंक टूटा—पर्स गोल, कपड़े गुम···।

मैं ढूँढ़ने लगा, बड़ी उत्सुकता से, बड़ी परेशानी से। वह न मिली, वह न मिली। उसे ले गए। आखिर उसे ले ही गए। ये चोर। मुझे और किसी चीज के जाने का रंज न था लेकिन अपनी काली अचकन के गायब होने का सख्त सदमा था।

महल्ले के कुछ लोग आए। मित्र आए। पूछताछ की। सहानुभूति प्रकट की। दो चार बातें कीं। अपना रास्ता नापा।

थाने में मैंने रिपोर्ट कर दी। दारोगा साहब आए। देखा-भाला—सरसरी तौर पर मुआइना किया। चौकन्ने रहने के लिए मेरे नौकर को डाँटा फटकारा। महल्ले के सिपाही को इस

चौहद्दी में कड़ी नजर रखने की हिदायत दी और मुझे कुत्ता पालने की सलाह। चलते बने।

चोरी करने को मेरे घर में चीज ही क्या थी, जो लोग चुराते, पर हाँ, उस काली सर्ज की अचकन को तो वे ले ही गए।

× × ×

दिन बीतता है। न जल्दी जल्दी और न देर देर। अपनी रफ्तार से। दिन के साथ घटनाएँ बीतती जाती हैं, धीरे धीरे पत्नियों की नाईं पुरानी हो जाती हैं। उनकी याद भी भूल जाती है। आदमी दूसरी उलझनों में कितनी नई समस्याओं में फँस जाता है और अतीत, बस एक अतीत रह जाता है…।

मैं गया था प्रयाग। वहाँ संगीत सम्मेलन था और प्रदर्शनी भी। शाम को तफरीह के लिए नुमाइश पहुँचा। पुराने मित्र, कुछ साथी, कुछ परिचितों से भेंट हुई। हा हा हू हू में, गप-सटाके में, हँसी-मजाक में, चहल-कदमी में वक्त कुछ अच्छा कट रहा था। मैंने देखा—एक सज्जन चूड़ियों की दूकान पर मोल भाव कर रहे थे। उनके साथ में, ऐसा लगता था, उनकी दुम, लटकन यानी श्रीमती भी थीं—गोरी, भद्दी आकृति। शायद उन्हीं की फरमाइश वे पूरी कर रहे थे। वे सज्जन महाशय काली शेरवानी पहने हुए थे। मुझे अपनी अचकन की याद आई। उसका रंग और कट बिलकुल मेरी जैसा ही तो था—जो एक साल पहले चोरी हो गई थी। दूर से मुझे ऐसा लगा। सज्जन का कद और सिहत भी मुझसे मिलती जुलती थी। मैं अपने को देखने लगा और उनको। अंदाजा लगाया। शुबहा हुआ। मित्रों से बहाना किया और उनसे छुट्टी ली। फौरन उसी दूकान पर पहुँच गया। पहुँचते ही पहुँचते वे उस दूकान को छोड़कर आगे बढ़

चुके थे पर मैंने नजदीक से इतना देख लिया कि शेरवानी के बटन बजिन्सहू वैसे ही थे जैसे कि खास तौर पर मैंने बनवाए थे। मेरा शक सही ही था। मुझे इसका यकीन होने लगा। मैंने उनका पीछा किया। उस शेरवानी का चप्पा चप्पा मेरा पहचाना था—क्या यही वह चोर महाशय थे? मै सोचने लगा। मेरी अक्ल काम नहीं दे रही थी। उनकी श्रीमती जी को कुछ संदेह हो रहा था कि मैं उनकी ही तरफ कुछ रुजू हूँ। वह बार बार कनखियो से घूम कर ताकतीं—शायद उनको अपने ऊपर कुछ मोगालता हो रहा था।

सोचने लगा कि कोई बहाना ढूँढ़ निकालूँ और इन महाशय से कुछ गुफ्तगू तो कर ही लूँ। शायद कुछ पता चले और अगर मैं साबित कर दूँ कि यह मेरी शेरवानी है तो मुझे अपनी चीज वापस मिलनी चाहिए। अगर वे न देंगे, तब? मै ले लूँगा—जबरदस्ती। पर श्रीमतीजी के सामने ही उनकी बेइज्जती की नौबत आ जायगी। इससे क्या हुआ। मुझे तो अपनी कर गुजरनी चाहिए। उनकी श्रीमतीजी का लिहाज, आखिर किसलिए?

वे आगे बढ़ते जाते थे, मैं परेशान होता जाता था। नुसाइश के फाटक तक पहुँच गया था—घड़ी मे ११ बज कर ४० हो चुके थे। वह फाटक की ओर मुड़ रहे थे पर उनकी श्रीमतीजी ने रोका और कदाचित् कहा—अभी एकाध चक्कर और लगा लो, कई चीजें खरीदनी बाकी रह गई है। वे घूम पड़े। मुझे कुछ संतोष हुआ। वे आगेवाली कपड़े की दूकान पर रुके। मैंने सोचा। मौका अच्छा है। चूको मत—यहीं इनसे मुठभेड़ कर लो। मैं दनदना कर वहीं उनकी बगल में डट गया। सामान तो कुछ खरीदना था नहीं। सिर्फ बतोलेबाजी करनी थी। मैंने दूकानदार से काली सर्ज दिखलाने के लिए कहा...। वे बगल में काश्मीरी नकल का शाल अपनी श्रीमतीजी को पसंद करा रहे

। पर दाम तगड़ा पड़ रहा था। इसी से तो वहाँ आपस में गुरचों गुरचों कुछ मतभेद चल रहा था। उनकी श्रीमतीजी की तबियत दुशाले पर ललचाई थी। महाशय टालमटोल कर रहे थे। नामे का सवाल था। चीज नफीस थी; पर मँहगी—४६) का एक। ओढ़े हुए अपने दुशाले को दिखाते हुए मैंने महाशय से कहा—

'देखिए, यह शाल दो साल पहले मैंने १९) का खरीदा था और आज तो दर दूनी तिगुनी हो गई है।' फिर वहाँ से बात पलटते हुए पूछा—'अब देखिए यह आपकी शेरवानी का ही कपड़ा—कितनी अच्छी सर्ज है। आज रुपया देने पर भी बाजार में ऐसी चीज कम मयस्सर होगी। फिर सिली भी कितनी अच्छी है।'

महाशय कुछ अपनी चीज की तारीफ सुनकर फूल रहे थे। मेरा दूसरा सवाल था।

'यह काली सर्ज आपने कितनी दर में खरीदी थी?'

इस पर वे जरा सकपकाए, फिर मुसकराते हुए बोले—

'मुझे बनी बनाई मिल गई।'

'अच्छा! बनी बनाई अचकन।'

मेरे कान खड़े हुए। मेरा शुबहा ठीक था। बिलकुल यह मेरी ही चीज तो है।

मैंने बखूबी पहचान लिया था। आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—

'शेरवानी रेडीमेड मिल जाती है साहब!'

'शायद आपको नहीं मालूम। बनारस में कटपीसों की दूकान है। वहीं से मैंने बनी बनाई खरीदी।'

'कितने में पड़ी?'

'सात रुपए मुझे देने पड़े थे।'

'तब तो आप बहुत सस्ते निपटे।'

सारी बातें स्पष्ट हो गई थीं। मेरा दिमाग भन्ना उठा। चोरों

ने मेरी शेरवानी को कटपीस की दूकान पर बेच दिया और वहीं से महाशय ने चोरी का माल खरीदा। मेरी जबान चुप थी। कैसे कहूँ कि उतार दो, यह शेरवानी मेरी है। महाशय तुमने चोरी का माल खरीदा है। दे दो''पर ? मेरे पास सबूत क्या था ?'''मेरी माँग काली सर्ज आ गई थी। महाशय लटकन के साथ खिसक रहे थे।

मैं बेसबूत खड़ा ताक रहा था।

—प्रगतिशील कामरेड—

❀ ❀

पढ़ने का समय : १५ मिनट

पठित : प्रसाद-परिषद्, काशी

रचनाकाल : १९४४

प्रकाशित : 'माया'

वह एक युवक है—नया, जवान, प्रगतिशील कम्यूनिस्ट। विद्यालय में पढ़ता है। उसके मित्र उसे पुकारते हैं—कामरेड। उसके विपक्षी उसे कहते हैं—गद्दार। मूँछें उसकी सफाचट हैं।

सर के बाल कुछ लंबे हैं—बेतरतीब। खादी की सादी पोशाक वह फैशन के लिए पहनता है। दिन भर में तीन पैकेट से कम नेवीकट मैगनम सिगरेट वह नहीं पीता और चाय तो उसकी जिंदगी का एक खास क्रम है। तर्ज उसका लीडराना है पर व्यक्तित्व नहीं। उसने थोड़ी बहुत 'पालिटिक्स' की किताबें जरूर पढ़ी हैं ऐसा कह सकते हैं, पर उन पर स्वयं भी कहाँ तक सोचा है यह कहना कुछ मुश्किल है, पर सोवियट का हवाला हर मसलों में उसकी जबान पर है।

बसन्त की छुट्टी जो आई, यारों ने कहा—

कामरेड—कहीं की सैर की जायगी।

'कहाँ चलोगे ?'

'कहीं चलो।'

वह कभी कहीं चलने के लिए तैयार है बशर्ते कि उसका खर्च दूसरे लोग बरदाश्त कर लें। आदमी वैसे कुछ मजेदार है, इसलिए कंपनी के ख्याल से उसका खर्च सँभालने में कुछ दिक्कत नहीं पड़ती और फिर उसका खर्च कहने के लिए जो मुख्तसर है।

प्रयाग से काशी कुछ बहुत दूर नहीं। इसी से मित्र नंबर एक, दो, तीन और कामरेड घूमने बनारस चल पड़े। किस दर्जे का टिकट लिया जाय इस संबंध में कुछ मतभेद हुआ। नंबर एक थर्ड क्लास में चलना चाहेंगे, पर नंबर दो को थर्ड क्लास के यात्रियों से नफरत है, इसलिए वे इंटर से कम की बात नहीं करते। नंबर तीन का चलने के विषय में कोई सिद्धान्त नहीं है। जैसी राय हो, उन्हें किसी में आपत्ति नहीं होगी।

'इंटर ले लो'

कामरेड ने निर्णय दिया और बात खतम हो गई।

स्त्रियों को देखकर बैठने का उसूल कुछ बुरा नहीं, इसी से

शायद तजवीज कर इन लोगो ने वह बोगी चुनी। उस कंपार्टमेंट में वैसे कोई विशेष आकर्षण तो नहीं पर एक बंगाली फैमिली अलबत्ता उसी मे जा रही है। उस फैमिली में बंगाली लडकी की उम्र कुछ नई जरूर है और उसमें कुछ नई रोशनी है। फिर सुन्दरता भी तो बनावट के साथ मिली है ही।

शाम होते होते ट्रेन चली तो साथ ही कामरेड की नजर भी उस नई रोशनी पर चल पड़ी। मित्र नंबर एक ने अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरकर यह महसूस किया कि मेरी दाढ़ी आज बढ़ी क्यों रह गई। शेव न कर लेने का उन्हें कुछ पछतावा सा हो रहा था। नंबर दो ने अपनी विलायती सर्ज के पतलून की क्रीज को सँभाला और ऐसे पोज मे बैठने की कोशिश की जिससे उनके जूते पर की चमकती हुई पालिश, हाथ मे बँधी रोल्ड गोल्ड घड़ी, जेब मे खुसी पारकर फाउनटेनपेन और रूमाल की डिजाइन—सब एक साथ प्रकाश मे आकर उनके बड़े आदमी होने का परिचय खासकर नई रोशनी को दे दे। नंबर तीन कुछ उखड़े हुए, न जाने किस विचार में लीन, खामोश से बाहर के छूटते हुए दृश्य को देख रहे है, जैसे इन्हें और बातो मे कोई रुचि ही न हो।

जो भी हो, उस नई रोशनी ने भी एक साथ अपनी साड़ी के बार्डर ऊँची एड़ी के जूते, पैर मे लगे महावर और अपने सँवारे हुए बाल, माथे पर टिकाई हुई काली बिंदी, कानो में झूमते हुए इअरिंग और नाजुक कलाइयो में पहनी हुई रंग-बिरंगी चूड़ियों को एक बार सजग कर दिया, जिससे कंपार्टमेंट सजीव हो उठा।

ऐसे मौको पर चूकना कामरेड ने नहीं सीखा। इसी से उसके चलता-पुरजा होने मे शक नहीं रह जाता। उसने बंगाल की चर्चा छेड़ दी। नतीजा यह हुआ कि बंगाली परिवार उसकी तरफ आकृष्ट हो गया। कामरेड सीटने लगा—रवीन्द्रनाथ टैगोर की

'गीतांजलि' उसने पढ़ी, 'गोरा' उसने पढ़ा और अनरूपा देवी के उपन्यासो से तो वह बखूबी परिचित है। शिशिरकुमार भादुड़ी को कलकत्ते के स्टार थिएटर में अभिनय करते हुए देखकर वह आत्म-विभोर हो चुका है। उदयशंकर को वह भारत का सर्वश्रेष्ठ नर्तक कलाकार मानता है तथा रवीन्द्रनाथ टैगोर और नन्दलाल वसु की कला से वह विशेष रूप से प्रभावित हुआ है। यह निश्चित मत है कि बॅगला-साहित्य और सस्कृति काफी बढ़ी चढ़ी है।

कामरेड से बंगाली महाशय जो कुछ बुजुर्ग से है, पढ़े लिखे,—सभ्य, अच्छे ओहदे के मालूम पड़ते हैं—बातें करने लग गए और नई रोशना भी कामरेड की तरफ ताकने लग गई। कामरेड ने सिगरेट जो जला दिया है और कामरेड के जरिए आफर किए हुए सिगरेट को लेने में बंगाली महाशय को कोई हिचकिचाहट नहीं हुई ।

बातों का सिलसिला चल पड़ा। कामरेड अपनी डींग होकने लगा—बंगाल रिलीफ के लिए उसने कितनी मिहनत की यूनि-वर्सिटी मे उसने हजारों रुपये चंदा इकठ्ठा किया · यह सब खूब तरीके और विस्तार से उसने कह डाला। बीच बीच में नई रोशनी पर भी अपनी नजर घुमा देना अनिवार्य इसलिए सम-झता रहा कि उसकी बातों का असर उस लड़की पर कैसा पड़ रहा है लेकिन वह नई रोशनी!···कभी अपनी चूड़ियो को खनका देगी, अपने पर्स को खोलेगी, बन्द करेगी, सिर पर की साड़ी को जानकर गिर जाने देगी, कभी बॅगला मे अपने बाबा से कुछ बोल देगी, कभी खिडकी के बाहर झॉकेगी, रह-रहकर बीच में मुसकरा देगी और बस···!

कामरेड टूटी फूटी बॅगला बोल और समझ लेता है। इसलिए बंगाली से बनावटी बॅगला उच्चारण मे कभी कभी बोलने का प्रयास कर देता है। अभी 'अमृतबाजार पत्रिका' उसने निकालकर

बंगाली महाशय को बिना माँगे पढ़ने के लिए दे दी। इसी बहाने बैठने की जगह भी बदल दी। नई रोशनी पर उसकी नजर अब अच्छी तरह पड़ सकती है। उसके साथी मित्र कामरेड की इन सब हरकतों को खूब समझ रहे हैं और नंबर दो को तो कामरेड से हसरत हो रही है।

रुकनेवाला जीव जो कामरेड नहीं। अभी शरत् बाबू के 'पथेर दावी' का जिक्र उठा दिया। उस लड़की ने हाँ मे हाँ मिलाकर यह बतलाया कि मैंने उस पुस्तक को पढ़ा है। फिर तो कामरेड ने अपनी तकरीर कायम रखी। शरत् तो बेजोड़ लेखक था। उनकी बड़ी प्रशंसा की। इसी सिलसिले मे कहने लग गया। कामरेडों के लिए प्रेरणा जो जरूरी है और लड़कियाँ ही उन्हें यह इंसपिरेशन दे सकती है। यही वह बतलाना चाहता है। नारी चाहे तो वह हजारों को शहीद बना सकती है। उसके अंदर ऐसी शक्ति छिपी हुई है। नारी जाग्रति को अपने अंदर लेकर सो रही है। वह एक ऐसी चिनगारी है जो दूसरों में ज्वाला प्रज्वलित कर सकती है। अब तक नारी अपने को नही पहचान सकी है। पुरुष ने नारी को सच्चे रूप में समझने का प्रयत्न नहीं किया है। उसे केवल वासना के प्रतीक के रूप मे ही ग्रहण किया है और शुरू से उसका 'सेक्सीय शोषण' करता आया है। लेकिन अब ऐसी अवस्था को तो रोकना ही होगा क्योंकि नारी विलास के अतिरिक्त जो कुछ और है उसे पुरुष को समझना होगा। पुरुष और स्त्री मे शीघ्र वर्ग युद्ध का होना अनिवार्य है। इस संघर्ष में स्त्री का पक्ष निर्बल न हो। ऐसी ही कामरेड की कामना और चेष्टा रही है...।

कामरेड के इस प्रगतिशाल तर्क—प्रोगेसिव थीसिस—पर बंगाली कुछ सहम रहे है। पर नई रोशनी को कामरेड की बातों मे एक नया आकर्षण दिखलाई पड़ा।

कामरेड ने अफसोस जाहिर करते हुए बतलाया कि अभी यू० पी० इन मामलों मे बंगाल से पिछडा हुआ है। उसने फिर सिगरेट जला दिया है · कलकत्ते में बंगाली महाशय कहाँ रहते है, कामरेड को यह जिज्ञासा हुई। कालेज स्क्वायर के पास उसका मित्र रहता है। वह स्वयं कलकत्ते में बालीगंज की तरफ रह चुका है। उसने यह जाना कि बंगाली महाशय हावड़ा में ही रहते है और वहाँ के अच्छे ऐलोपैथिक डाक्टर है।

आज कलकत्ते की क्या दशा है, इसका बयान अखबारों से ज्यादा अच्छा बंगाली महाशय के ही मुँह से कामरेड सुनना चाहेगा। लेकिन अब तो बनारस स्टेशन जो आने ही वाला है। इसलिए कामरेड के साथी असबाब ठीक करने में लग गए और कामरेड को भी बातों का सिलसिला छोड़ देना पड़ा। कामरेड का सिगरेट जो सुलग चुका है, मजबूरन उसे छोड़ना पड़ेगा वर्ना उसका हाथ जो जल जायगा।

बनारस कैंट पर गाड़ी लग चुकी। बंगाली महाशय और नई रोशनी तो अब चले जाएँगे जहाँ तक ट्रेन जायगी, पर कामरेड को संतोष है कि उसने अपना प्रभाव नई रोशनी पर छोड दिया, क्योंकि चलते वक्त डिब्बे मे से मुँह निकालकर वह बिदा दे गई और कामरेड भारी दिल से उससे केवल नमस्कार ही कह सका।

रास्ते भर कामरेड बोलता आया इसी से शायद वह कुछ खामोश हो गया, क्योंकि इंसपिरेशन जो छूट गया। जो भी हो रास्ता अच्छा कटा। कामरेड और उसके साथी कुछ खुश हैं।

रात बनारस मे कैसे कटेगी यह दूसरी समस्या सामने आई। काश्मीरी होटल मे ही टिके, एक कमरे में ही जमीन पर बिस्तर लगाकर सो लेंगे। खाना खाने के बाद रात मे घूमने निकलें, यही प्रोग्राम अभी निश्चित हुआ।

होटल पहुँचते, सामान रखते, कपड़ा बदलते और खाना खाते पीते साढ़े ग्यारह बजे ही। मित्र नंबर एक की राय है कि सोवें, नंबर दो तो घूमना चाहेंगे। नंबर तीन को किसी बात में आपत्ति नहीं होगी। जैसी सबकी राय होगी वे सहमत होंगे। कामरेड के ऊपर बात छोड़ दी गई। कामरेड को नई रोशनी की याद अभी ताजी है। नींद नहीं आएगी, कुछ शगल का होना जरूरी है। आखिर बनारस सोने के लिए तो नहीं आया गया। यही कामरेड ने कहा—सेकेंड शो सिनेमा भी शुरू हो गया होगा। फिर? तबियत बहलाने के लिए ही तो चौकड़ी आई है।

नंबर दो ने सूझ पेश की—

'रात का बाजार देखा जाय।'

'गाना सुनने की बात··'

'ऐ वन।'

कामरेड ने प्रस्ताव स्वीकार किया। यार लोग निकल पड़े।

उस बनारसी ने इन लोगों के रंग-ढंग चाल-ढाल से ही ताड़ लिया कि ये रगंरूट है तभी तो वह इनके पीछे लग गया।

'बाबूजी'

'क्या है?'

'चलिएगा?'

'कहाँ'

'बाईजी के यहाँ—ऊपर।'

'क्यों?'

'अरे—गाना सुनिए।'

'कोई अच्छी गानेवाली बताओ·'

'बाबूजी, कह तो रहा हूँ चलिए न मेरे साथ। जन्म भर आप भी याद करेंगे कि किसी ने आपकी खातिर की थी।'

'तो ले चलो । देखो—खूबसूरत है न ! और हाँ, उम्र भी हो' कामरेड ने कहा।

'वाह सरकार चीज पसंद न आए। तो सिर गंजा कर डालिए।'

बातों के साथ ही मंजिल आ गई।

दलाल ने कामरेड को मित्र नंबर एक दो तीन के साथ कोठे पर दाखिल कर दिया।

दूसरे दिन की सुबह कुछ देर से हुई। सफर की थकान, रात की जगाई और मुजरे की खुमारी ने अपना खूब असर रख छोड़ा है। उठते ही नबर एक को चाय की फिक्र पड़ी। वह ब्वाय से कमरे मे ही चाय लाने के लिए कहने गया है। नबर दो ने सिगरेट जला दिया, बैठा कश मार रहा है। रात का दृश्य उसकी नजरो के सामने घूमने लगा। नंबर तीन की नींद अभी शायद नहीं पूरी हुई इसी से वह खर्राटे ले रहा है।

पर चाय आई तो नबर तीन को भी उठ बैठना पडा। लोग चाय पीने में जुट गए। कामरेड अभी नही लौटा इसी का जिक्र छिड़ा है। वह कहता कुछ है, करता कुछ है। झूठा प्रचार यही उसकी विशेषता है। पुरुषो के द्वारा नारी के सेक्सीय शोषण के विरोध मे ट्रेन पर तो कामरेड खूब डीग हाँकता रहा लेकिन शाम का सिद्धान्त रात को···!

बात पूरी नहीं हो पाई थी कि कामरेड की परिचित पगध्वनि जीने पर सुनाई दी और दूसरे क्षण वह कमरे मे मौजूद था।

नंबर तीन ने हँसते हुए कहा—

'थिंक आव् दी डेविल एंड ही इज देअर—शैतान को सोचो और वह तुम्हारे सामने मौजूद है।'

यारों ने भाँपा—कामरेड का चेहरा उतरा हुआ है।

❀ ❀

— बारात —

❀

पढ़ने का समय : ५ मिनट

रचनाकाल : १६४४

प्रकाशित : 'ससार', दीपावली अक

खून के से हल्के रंग के छपे हुए निमन्त्रण-पत्र पर बारात का समय तो सात का ही दिया गया, पर साढ़े सात बजे तक ही बारात निकल पाएगी ऐसा न्योता देनेवाले ने मुझे बतलाया और फिर मै समझ गया कि स्थानीय बारात आठ के पहले न चल सकेगी। निर्धारित समय पर पहुँचकर व्यर्थ समय नष्ट क्यों करूँ ऐसा तर्क मस्तिष्क मे न उठा हो, यह बात तो न थी, पर मैंने विवेक की बात नहीं रखी और निश्चय किया है कि जो समय लिखा है, उसी के अनुसार पहुँचूँ।

उमंग, जोश और खुशी जैसे बच्चों को बारात मे शरीक होने में होती है, वैसी मुझमे नहीं है। रोज के कार्यक्रम के साथ यह भी एक बात जुट गई है, इसलिए शाम को घूमने न जाकर बारात मे जाना ही मेरा घूमना हो जाएगा।

शाम हुई, चला तो भाभी ने जिज्ञासा की —

'कहाँ जा रहे हो ?'

'बारात में।'

'वाह ! तुम भी वही निकले''लोग बारात में सजधज कर बन-ठनकर जाते है और तुम वही खद्दर का पाजामा, कुरता और गाँधी टोपी लगाकर चल दिए''''''।'

सफाई पेश करने के बजाय ऐसे मौकों पर ज्यादा तौर पर मै खामोश ही रहता हूँ और अपने मन में छानबीन कर जो सही समझा है उसी पर अमल करता आया हूँ। अंदर और बाहर की सादगी और सादे साफ लिबास का मै कायल हूँ। जमाना भले ही बाहर की चकाचौंध को महत्त्व दे, पर बाहर का ठाट भीतर के खोखलेपन पर कभी भी पर्दा नहीं डाल सकता, ऐसा ही मेरा विश्वास बना रहा है।

जिनकी शादी है, वे सभ्य कहे जाते है। आधुनिक विद्यालय की कई डिग्रियाँ उन्हें प्राप्त है। शहर के कंजूस रईसो मे उनकी गणना है। पिता के देहान्त के बाद सारी जायदाद के मालिक बने, पर हाल में ही जब उनकी पहली पत्नी का शरीर छूटा तो वे तीन बच्चो और उनकी अधेड उम्र की वरासत छोड़ गई ''।

यही बात है कि दूसरी शादी मे खूब हंगामा और चहल-पहल नहीं है। कुछ चुने हुए और खास खास लोग ही बारात मे बुलाए गए थे।

पहुँचने पर मैने देखा कि मकान की छुआई पुताई तो हुई है पर पीले और गेरुए वैरागी रगो के प्रयोग किए जाने से कुछ प्रभाव मे मनहूसियत आ गई है। जो लोग बारात में सम्मिलित होने आए है उन्हें देखने से मैने महसूस किया जैसे ये लोग मोकाम देने के लिए वहाँ उपस्थित हुए हो। अभी मुश्किल से पंद्रह सोलह सज्जन पधारे है और औरों के आने की बाट जोहने

में ही समय कटने लगा तथा कुछ गुफ्तगू भी शुरू हो गई है। तश्तरी में पान और विदेशी सिगरेट का दौर आया तो मुझे विनय के साथ सिगरेट को अस्वीकार करना पड़ा।

मै पढ़ रहा हूँ कि लोग अपने मन मे सोच रहे है कि बात जो होनेवाली है वह अच्छी तो नहीं है फिर भी जो हो रही है।

प्रश्नवाचक 'क्यों' बहुत दूर तक न जाकर बीच मे ही लुप्त हो जाता है और बात भूलने नहीं पाती कि फोड़े के दर्द के माफिक बीच में ताजी हो जाती है···।

जीवन-साथी की बिछुड़न, तीन लड़के और उस पर ढली हुई उम्र· फिर भी दोबारा शादी का शौक·· बात कही कैसे जाय सबने इस बात की उपेक्षा की है और सत्य को अपने बीच से हटा देना चाहा है पर मैं जब तक वहाँ बैठा रहा हूँ, यही सोचता रहा हूँ और यह विचार मुझे बेचैन करता रहा है कि दूसरी पत्नी का हौसला, उसका स्वप्न, उसके जीवन के भविष्य का क्या होगा···?

अभी अंदर से एक गोरा सा सुकुमार लड़का निकला है। चेहरे पर भोलापन और सात वर्ष की उम्र उसकी होगी। गोकि उसे देखनेवाले यह कह भी सकें कि अभी यह समझदार नहीं हुआ है पर मै कहूँगा कि कुछ सूझ-बूझ तो आ गई है। कुर्सी पर बैठे हुए बगल के सज्जन को उसने नमस्ते किया है और पूछा—

'बड़ी दीदी क्यों नहीं आई ?'

मेरी पहचान ने परखा है कि वह नौशा का दूसरा लड़का है। प्रश्न अपने उत्तर की प्रतीक्षा मे है और उन सज्जन ने अपनी पत्नी के न आने का कारण अस्वस्थता बतलाया है·····।

बच्चे के अंदर बैठकर मेरी चेतना ने मुझे उभारा है और

उस बच्चे के अंदर छिपी हुई अव्यक्त मौन उदासी की तरफ खिंचने के लिए मेरी भावना छटपटाने लगी है। अन्तर की बात बाहर आ गई है, उदासी की रेखा बच्चे के सुकुमार चेहरे पर छाई हुई है।

साँझ के झुटपुटे में ढलते हुए सूरज से मैंने उदासी की तुलना करनी चाही है, पर सर उठाकर देखा है तो पता चला है कि सूरज तो डूब चुका है और तभी नौशा साहब भीतर से बाहर बारात निकालने के लिए आए है ।

—सेकेंड हैंड—

❀ ❀

पढ़ने का समय : १० मिनट
पठित : कहानी-सम्मेलन, प्रसाद-परिषद्
रचनाकाल : दिसंबर, १९४२
प्रकाशित : 'सजनी'

नए जमाने की, नए युग की, नए रंग में रँगी हुई, नए ख्याल की, नई उम्र की वह आधुनिक लड़की है—मीना। चेहरा, डील-डौल, कद, रंग सब कुछ आवश्यकता से अधिक सुन्दर।

युवक पुरुषों से खास दिलचस्पी, यही उसकी विशेषता है। वह देखती है, समझती है कि रूप के परखनेवालों का उससे खास लगाव और खिंचाव रहता है। वे उससे कुछ चाहते है। पर वह उनको चकमा देने में, उलझाने में काफी चतुर है। यद्यपि 'मैट्रिक' उसने पास कर लिया है पर उसकी योग्यता 'बिलो स्टैंडर्ड' है। उसकी बुद्धि से अधिक खतरनाक उसकी उम्र है।

बँगले के आधे खाली हिस्से में बसनेवाले नए किराएदार सज्जन सतीश और देवेन्द्र के ऊपर आज कल मीना अपनी सुन्दरता का प्रयोग कर रही है। वे दोनों युवक विद्यालय की पढ़ाई समाप्त करके प्रतियोगिताओं में अपना भाग्य तौलने के लिए आए है। एक महाशय पी० सी० एस० में बैठ रहे है, दूसरे मुंसिफी में, दोनो अच्छे खानदान के हैं, दोनो का बौद्धिक स्तर ऊँचा है, दोनों साहित्यिक है, साथ ही साथ दोनों बेशादीशुदा। शायद तभी वे मीना के बाबूजी, एडवोकेट की नजरो मे कुछ खटके। न जाने क्यों लोग अविवाहित पुरुषो को संदेह की दृष्टि से देखते है।

सतीश लेखक है और देवेन्द्र कवि। दोनो को अपना वर्तमान वातावरण पसंद है। सतीश के लिए मीना एक 'स्टडी' है, देवेन्द्र के लिए एक प्रेरणा। जब से मीना को उसने देखा है उसे कविता में सजीव बनाने के लिए व्यग्र है, फलस्वरूप उसका अध्ययन कम होता है और कविता करने का प्रयास अधिक।

× × ×

मीना के पिता जी—एडवोकेट साहब—घुटे हुए तजरबेकार व्यक्ति है। जिदगी को उलट-पुलटकर उन्होंने देखा है, समझा है और यहीं तक उनका देखना और समझना भी खतम है।

शुरू में खचड़ी मोटर पर चढ़ते थे। जब से पेट्रोल का नियंत्रण हुआ, मोटर पर चढ़ने का बहाना उन्हें मिल गया। वकालत करते उन्हें अरसा हुआ, अपने जमाने में उनकी वकालत चमकी थी। इधर युद्ध के कारण आमदनी मंदी जरूर पड गई है, फिर भी औसतन काफी पीट लेते हैं। बिजली कम खर्च हो इसलिए रेडियो का प्रयोग कम करते हैं। पति और पत्नी दोनों किफायतसार हैं, पर उनकी लड़की मीना के चेहरे पर खूबसूरती ने कभी किफायतसारी नहीं की।

× × ×

मीना ने अपने छोटे भाई दामोदर के जरिए अपने नए पड़ोसियों के बारे में बहुत कुछ जान लिया है। दामोदर अभी पाँचवें दरजे में ही पढ़ता है। आज सुबह ही दामोदर देवेन्द्र के यहाँ आया—उससे कविता माँगने। देवेन्द्र इधर जोरों से कविता लिख रहा है। शाम को गुनगुनाकर आँगन से मीना को सुना देता है। उत्तर में मीना भी सिनेमा के गाने की मौजूँ पंक्तियाँ गा देती है।

दामोदर देवेन्द्र से कहता है—

'कविता माँगी है।'

'किसने ?'

'जीजी ने।'

'कौन सी कविता ?'

'जो कल गा रहे थे।'

'अभी पूरी नहीं हुई है।'

'नहीं—दे दीजिए।'

वह जिद करता है, पर देवेन्द्र कहता है जो कुछ मैं कह रहा

हूँ उसे पहले कह आओ। दामोदर चला जाता है, पर फिर वापस आता है…।

'अधूरी ही माँगी है—दीजिए।'

सतीश देवेन्द्र की करतूत देख रहा है कि इसने लस्तगा लगा रखा है। दोनों तरफ से छेड़खानी शुरू हो गई है। सतीश एक छींटा कसता है—

'शर्माते क्यों हो? माँग रही है तो दे दो।'

शाम को दामोदर फिर आया। देवेन्द्र ने कहा—

'अभी अपनी जीजी से कह देना कि कविता पूरी नहीं हुई…।

लेकिन सतीश इस बार देवेन्द्र की कविता की फाइल उठाकर दामोदर को दे देता है—'ले जा दामू, जाके दे दे अपनी जीजी को।'

देवेन्द्र चुपचाप सतीश का मुँह देख रहा है। दामोदर ठेंगा हिलाकर दिखा दिखाकर देवेन्द्र को चिढ़ाता है और भीतर फाइल लेकर भाग जाता है। देवेन्द्र मन ही मन सतीश पर खुशी भी हो रहा है, रंज भी। अगले दिन माँग आएगी तब? इतनी जल्दबाजी की क्या जरूरत थी, उसकी आँखो में यह भाव छिपा है।

वे बंगाली भी तो पड़ोस के बँगले के हिस्से मे रहते है। उनकी भी मीना के यहाँ आमदरफ्त है। बिजली की कपनी में काम करते हैं। मस्ती हो जीवन में, बस यही उनकी दार्शनिकता है। चौबीस की अभी कुल उम्र है—वे चल रहे है। जो कुछ मिलता है पहली के पहले सब कुछ खर्च हो जाता है। माँ-बाप कोई नहीं है। एक भाई साहब है—जो अलग रहते है। एडवोकेट की पत्नी बंगाली को मानती है। बंगाली मोअक्किल फँसाने में एडवोकेट की मदद करते है। मीना को पढ़ने के लिए उपन्यास

पत्रिकाएँ खरीदकर देते हैं और दामोदर को कभी लेमनचूस, कभी पतंग कभी कुछ। गाहेबगाहे, एडवोकेट साहब को छोड़कर, क्योंकि उनको फुर्सत नहीं रहती, उनकी फैमिली को मुफ्त में सिनेमा ले जाते है। बिजली फ्यूज हो जाने पर आकर बड़ी तत्परता से रात-बिरात बना जाते है, लेकिन बिजली 'फ्यूज' करने में खुद बंगाली की शरारत रहती है, इसे एडवोकेट कभी नहीं भाँप पाए। अपना उठउवा बिजली का पंखा वकील के घर पहुँचा दिया है, खुद बेना डुलाते है। मीना ने कहा है—सामने लान पर बैड-मिन्टन का कोर्ट बनवा दीजिए। आजकल उसी की तैयारी में चूर हैं। पर बैडमिन्टन के बल्ले और शटलकॉक की चपत तो भुगतनी पड़ेगी, इसी से थोड़ी परेशानी भी है। लेकिन मीना की खातिर कोई बात नहीं। डायना कम्पनी का मैनेजर जो अपना दोस्त है। जितने का सामान चाहेंगे फिलहाल उधार मिल जायगा, इसी से सन्तोष है—आगे की देखी जायगी।

× × × ×

मीना को गाने से शौक है। बाकायदे म्यूजिक मास्टर संगीत की तालीम देने के लिए आते हैं। रमेश अभी लड़कौंधे से ही तो है—जवान। अभी ही तो भातखंडे संगीत विद्यालय लखनऊ से पास करके निकले है, ठेका देने से लेकर अलाप लेने तक मीना को सिखला दिया है। ध्रुपद, आशावरी और बागेश्वरी मीना खूब गा लेती है। इसी से तो मास्टर रमेश को अपने ऊपर मोगालता है, समझते हैं कि मीना पर तो मेरी 'मानोपली' है। बंगाली और देवेन्द्र दोनो से बहुत चिढ़ते है। उनका यह मत है और वह यह कहते है कि ये सब लोफर है—लोफर। 'मीना इनसे अधिक सम्पर्क मत रखा करो।' मीना केवल मुस्कराकर

उनकी बात टाल देती है। संगीत-सम्मेलन निकट है, इसलिए वह मीना को जी-जान से तैयारी करा रहे है। गाने का रियाज भी मीना ने अच्छा किया है। एडवोकेट साहब की भी बड़ी लालसा है कि मेरी लड़की संगीत में अव्वल आए। शाम को कभी कभी मीना को म्यूजिक टीचर साहब अल्फ्रेड पार्क मे टहलाने ले जाते है।

× × × ×

दोपहर मे देवेन्द्र बाहर बरामदे में बैठा किताब उलट पुलट रहा था। उसने देखा आज बेसमय मीना से मिलने के लिए एक नए सज्जन आए। शायद कोई दूर के रिश्तेदार 'कजिन वजिन' थे। सीधे भीतर चले गए। घंटों बाद निकले। एडवोकेट साहब तो कचहरी गए थे, उनकी पत्नी बैनरजी की पत्नी से मिलने और दामोदर स्कूल पढ़ने गया था। मीना और उनमें बहुत देर तक घुल घुलकर बाते हुईं। आज शाम को सतीश जब पुस्तकालय से लौटे देवेन्द्र उससे सारा किस्सा बतला रहा था। उसने कहा—'मैंने झांककर देखा था, भीतर से मीना ने दरवाजे बन्द कर लिए थे। घर में कोई नहीं था—एकान्त।'

देवेन्द्र की तरफ से आजकल मीना उदासीन है। देवेन्द्र आँगन में कविता गुनगुनाता है तो उसे उसका उत्तर नहीं मिलता। उसकी कविता की फाइल बिना किसी प्रशसा के लौटा दी गई। देवेन्द्र ने बड़ी आशा से फाइल के हर एक पन्ने को देखा, पर उसे उसमें मीना का कोई भी चिन्ह या पत्र न मिला। दामोदर पहले की तरह अब भी आता है पर वह बात नहीं रही। सतीश ने देवेन्द्र के सामने उससे कहा—

'देवेन्द्रजी मुझसे शिकायत करते है, तुम्हारी जीजी आजकल

उनसे नाराज मालूम पड़ती है। अपनी जीजी की नाराजगी का सबब पूछकर बतलाओगे ?'

'धत' कहकर वह सिर्फ शर्मा जाता है। वंगाली की फाउन टेनपेन दामोदर ने ले ली है, आज आठ दिन से अधिक हो गए उसे लौटाया नहीं। उसी से वह उलझा हुआ है। सतीश ने देवेन्द्र से कहा—

'ऐसी बातें अभी तुम नहीं बरदाश्त कर सकते। यह सब सीखो, कुछ प्रेजेन्ट वगैरह मीना को नहीं तो दामोदर को ही दो, तो शायद वह अपनी जीजी को मनवा ले।'

सतीश की इस बात पर देवेन्द्र बिगड़ गया। बोला, तुमने मुझे क्या समझ रखा है। सतीश ने साफ कह दिया—'मीना का गुस्सा मेरे ऊपर मत उतारो।'

खैर, किसी तरह मजाक की बात मजाक में खतम हो गई।

वंगाली आज शाम को सतीश से मिलने आया। बड़ा खीझ रहा था। उसके बड़े भाई सत्याग्रह आंदोलन में पकड़े गए। उनका सारा परिवार आजकल उसी के यहाँ है। खर्च सम्हालना पड़ रहा है। तंगिश है। जो कुछ हो, वह वंगाली सीटने में एक ही है, कभी भी बाज नहीं आता। कहने लगा—मीना में अब मुझे विशेष रुचि नहीं रही। मीना का प्यार मुझे मिल चुका है, आगे मुझे वह न चाहे परवाह नहीं। आजकल उसकी चौकड़ी दूसरी जगह लगती है। लेकिन शाम को मीना को बैडमिंटन खिलाने के लिए आ ही जाता है। मीना न जाने क्यों देवेन्द्र के साथ बैडमिंटन खेलने में हिचकती है।

मीना के रोमांसों का सिलसिला आजकल कुछ धीमा पड़ गया है—क्योंकि उसकी शादी की चर्चा गर्म है। मीना जरूरत से ज्यादा सयानी हो चुकी है। मिसेज एडवोकेट अपनी लड़की

की शादी के लिए जोर बाँध रही है। एडवोकेट साहब भी चिंतित है। एक ही लड़की—उसको कितने नाजों और अरमानों से पाला है, तरह तरह की तालीम दिलवाई है पर अब खोजने से भी अच्छा सा वर नहीं मिल रहा है। शहर में मीना की सुन्दरता की शोहरत तो है पर साथ साथ उसके रहन सहन और तर्क से भी लोग परिचित हैं। एडवोकेट साहब यह जानते है कि रूढ़वादियों की बात तो दूर रही, उदार मत के भी सज्जन उनके यहाँ शादी करने में आनाकानी करेंगे। प्रगतिशील खानदान में ही वह खप सकेगी पर प्रगतिशील ऊपर से, ढाँचे में, विचारों में प्रगतिशील भले ही हों पर व्यावहारिक मामलों में अव्यावहारिक होते हैं। बहरहाल एडवोकेट ने मीनाकी शादी के लिए, अखबारों में विज्ञापन निकलवा दिया है।

एडवोकेट साहब चाहते थे कि मीना की शादी डाक्टर शर्मा से हो जाती। शर्माजी ने कम उम्र में खूब तरक्कीकी है। कांग्रेस के सदस्य है। जेल हो आए हैं। नेता है। रईस है। तीस के हो चले पर अभी तक शादी नहीं की। स्त्रियों से नहीं पर शादी से घबड़ाते हैं। हिन्दुस्तान की भलाई संयम में है--ऐसा कहते हुए उन्हें लोगो ने सुना है। भारत में इतने काफी लोग है कि अगर दस साल तक लोग शादी न करें, बच्चे न हो तो कोई हर्ज न होगा और देश की गिरी हुई हालत भी सुधर जायगी ··—ऐसे उनके मौलिक विचार है। मीना के सम्बन्ध मे आलोचना करते हुए उन्होंने कहा था—

'वह तो सेकेंड हैंड ·· !'

और शादी का प्रस्ताव डिसमिस कर दिया।

पर शर्माजी नहीं तो कोई और। जो कुछ हो शादी तो मीना की होकर ही रहेगी। फिर जब पाच हजार नगद··।

हाँ तो आखिर मीना की शादी तय हो गई। लखनऊ के प्रोफे-सर के साथ जो ट्रेनिङ्ग कालेज में पढ़ाते हैं। अंगरेजी साहित्य के एम० ए० हैं। विद्वान् हैं। 'टेस्ट' के आदमी फिर भी कोमल स्वभाव और बहुत अंशो में भावुक। मीना की असाधारण सुन्दरता एवं आकृति ही देखकर उन्होंने 'हाँ' कह दिया।

लेकिन जब से शादी हुई है, मीना आई है, दोनों में कुछ निभी नहीं। न जाने क्यों ? सुन्दर पत्नी, पढ़ी लिखी, योग्य अच्छे घर की मिली, फिर भी चिंता। पर हाँ जिस दिन से प्रोफेसर को म्यूजिक मास्टर रमेश का पत्र मिला है, उनकी शंका और भी सबल हो उठी है। उसने जो कुछ भी मीना के बारे में लिखा है जरूर सही होगा। रमेश तो खुद मीना को संगीत पढ़ाता था, प्रोफेसर का भी मित्र रह चुका है। वह झूठ क्यो लिखेगा ? प्रोफे-सर आज जरूर मीना से पूछेगा—वास्तव में और सब कुछ तो मीना मे है पर वह ताज़गी नहीं है। ऐसा उसने भी महसूस किया है। ऐसा उसे लगता है।

× × ×

आज प्रोफेसर साहस करेगा और मीना से जरूर उसका अतीत पूछेगा।

'मीना'''देवेन्द्र को जानती हो ?'

'देवेन्द्र ! कौन देवेन्द्र ?'

'तुम्हारा मित्र कवि देवेन्द्र ?'

'हाँ · उसे तो जानती हूँ। पर वह मेरा मित्र तो नहीं।'

'क्या यह भी जानती हो कि वह तुम्हारा प्रेमी था।'

'मैं कैसे कहूँ ? मै क्या जानूँ ?'

'और तुमने भी उससे प्रेम '

'मैंने उससे प्रेम ''यह आपसे किसने कहा।'

'मीना, तुम सही सही मेरी बातों का उत्तर दे दो। बस, मैं सन्तुष्ट हो जाऊँगा। मैं जानता हूँ तुम झूठ न बोलोगी। देवेन्द्र से घनिष्ठता थी, क्या यह सच है ?'

'नहीं—गलत, वह तो एक सरल युवक था। शर्मीला सा, कविता करता था, कल्पना जगत की बातें करता, दार्शनिकता बघारता। बँगले के आधे हिस्से की दालान में वे लोग मुझे सुनाने के लिए जोर जोर से बातें करते। मुझे तो उसकी दशा पर कभी दया आती कभी हँसी।'

'खैर'''वह बंगाली बाबू कौन थे ?'

मीना के कान खड़े हुए।

प्रोफेसर साहब ने रमेश म्यूजिक मास्टर का पत्र मीना के सामने रख दिया। मीना ने आद्योपान्त पत्र को पढ़ा फिर बड़े दृढ़ और निश्चित शब्दों में बोली—

'मैं स्त्री हूँ। स्त्री होने के नाते अपराधिनी हो सकती हूँ। पर वास्तव में तो आज का पुरुष कतिपय अपवादों को छोड़कर, एक गिरा हुआ व्यक्ति है। इस प्रकार किसी को लांछित करना''मैं मानती हूँ कि स्त्रियों की दुर्बलता मेरे अन्दर थी''पर मैंने अपना स्त्रीत्व कभी नहीं खोया।

पुरुष तो अपने दृष्टिकोण से प्रत्येक वस्तु को देखता है। चीजों का मतलब निकालता है। आज पुरुषों के लिए जो क्षम्य है, स्त्री के लिए नहीं। पुरुष अपने पुरुषत्व को भी खोकर समाज में पुरुप बना रह सकता है। स्त्रियाँ नहीं। पुरुप और स्त्री होने में यही अन्तर है। पुरुष हमेशा फर्स्ट हैंड'''।'

मीना चुप हो गई। झटके से भीतर जाकर उसने अपनी अटैची खोली; उसमें से एक पत्र निकाला। पत्र को प्रोफेसर

साहब के हाथों में थमा दिया—
बोली, लीजिए, पढ़िए—

दिल्ली
४ नवम्बर

सखी 'श्रीमती' मीना,

सौ सौ बार बधाई! बधाई! मुझे खुशी हुई, बड़ी खुशी हुई। रंज सिर्फ इतना ही रहा कि तुम्हारी शादी में मैं शरीक न हो सकी। तुमसे तो कुछ छिपा नहीं है। अबकी सातवाँ चल रहा है ·।

मीना, मैं मजबूर थी वर्ना मैं जरूर आती · प्रोफेसर साहब तो बड़े अच्छे हैं। रंगीन हैं। मैं उन्हें अच्छी तरह जानती हूँ। मैं उनकी स्टूडेन्ट रह चुकी हूँ। उनके बारे में मुझे बहुत सी बातें मालूम हैं। मैं क्या क्या लिखूँ। मेरे बेच की नीरदा के साथ उनकी बहुत पटती थी। नीरदा को वह बहुत 'लाइक' करते थे। नीरदा भी अच्छी लड़की थी। इसके पहले साल जब अंजली, वह मशहूर नृत्य कला में प्रवीण अंजली, जानती हो न उसे--वह इलाहाबाद के संगीत सम्मेलन में भी तो गई थी, जिस साल तुमने वहाँ 'पिया नहीं आए रैन · ' गाकर लोगों को बेचैन कर दिया था। याद है—मैंने तुम्हारा अंजलो से परिचय कराया था। हमलोग साथ ही सिनेमा भी गए थे। हाँ तो, उस अंजली से प्रोफेसर का रोमांस सालों चलता रहा। सारा कालेज जानता था। बिलकुल शोहरत थी। पास करने के बाद अंजली लाहौर चली गई। इसका 'शाक' प्रोफेसर के ऊपर गहरा पड़ा था। इसके पश्चात् कुमारी शीला न जाने क्यों प्रोफेसर पर रीझी थीं। वह उनके बँगले पर भी जाती थी। उनसे पढ़ने की किताबें, व नोट्स लाती, नोट्स आफ लेसन बनवाती, लेकिन

प्रोफेसर साहब अंजली के चले जाने के बाद कुछ उदास और सुस्त रहते··। खैर मीना·· और बहुत बहुत सी बातें लिखूँगी, फिर मिलने पर बातें होंगी। पर मुझे विश्वास है तुम्हारा जीवन प्रोफेसर के साथ अच्छा ही बीतेगा···काश तुम प्रोफेसर को खुश कर सको। चूकि तुमने उनके बारे मे पूछा था मैंने लिख दिया। मैं तुम्हें भ्रम में नहीं रखना चाहती थी। जो बीती सो बीत गई। भविष्य तुम्हारा है। तुम जैसा चाहो उसे बना सकती हो। अच्छी रहो। खुश रहो। एक दिन मेरी तरह तुम भी·। दुआ देती हूँ। आज बस इतना ही—नमस्ते।

तुम्हारी
रजनी

प्रोफेसर ने जब पत्र से आखे ऊपर कीं तो उन्होंने देखा कि वह पत्र पढ़ रहे थे और मीना उनको पढ़ा रही थी।

'सेकेंड हैंड तुम या मै?'

मीना की आँखें उनसे पूछ रही थीं। दोनों चुप थे।

❀ ❀

पत्थर की देवी

• • •

— कुँअर कृष्णकुमार सिंह —

• • •

यदि भारतीय जीवन के प्राचीन और नवीन रूपों के संगम और गार्हस्थ्य जीवन के विविध पक्षों की यथार्थ झलक देखनी हो—तो 'पत्थर की देवी' पढ़िए। यदि जीवन में भावमयी प्रेरणा उत्पन्न करनेवाली प्रकृति का चित्रण देखना हो—तो 'पत्थर की देवी' देखिए। यदि घटना का घटाटोप छानेवाले कथानकों से ऊब गए हों तो मानवचरित्र की मनोहर झाँकियाँ करानेवाली 'पत्थर की देवी' मँगाकर रखिए।

•